THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY
OU_184173
UNIVERSAL LIBRARY

891 P.G. S2474
B53K
भर्तृहरि
वैराग्यशतकम्
11845

OUP-557-13 7-71-3000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. 891 B67V

Accession No. G. S 2474

Author भर्तृहरि.

Title वैराग्य शतकम्. अनु. हृदयालु 1845.

This book should be returned on or before the date last marked below

॥ श्रीः ॥

श्रीभर्तृहरिकृत

वैराग्यशतकम् ।

कविवरश्रीहरिदयालकृतपद्यात्मक-
भाषया समेतम् ।

काशीस्थनिर्मलप० स्वामिगोविन्दसिंहकृत-
विषमपदटिप्पणोपेतं तेनैव च परिशोधितम् ।

तदिदम्

श्रीकृष्णदासात्मज--क्षेमराजेन
मुम्बय्यां
स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालये
मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।

संवत् १९८०, शके १८४५.

सर्वेऽधिकाराः "श्रीवेंकटेश्वर"-यन्त्रालयाध्यक्षाधीनाः
सन्ति ।

यह पुस्तक खेमराज श्रीकृष्णदासने बम्बई खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाट लेन निज "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेसमें अपने लिये छापकर यहीं प्रकाशित किया।

काशीनिवासी निर्मलपं० स्वामीगोविन्दसिंहसाधुः

ॐ

प्रस्तावना.

इस अविचारित सुखलेशलासित दुःखबहुल संसारमें प्राणिमात्रको दुःख प्रायः दो तरहका देखनेमें आता है, एकका स्थूल शरीरहीमें प्रायः भान होताहै जैसे वातपित्तादिके प्रकोपसे ज्वरादि और दूसरा दुःख मानसिक है जैसे राग द्वेष ईर्षादि इस उभयविध दुःखके प्रतिकारक चिकित्सकभी इस हमारे पवित्र देशमें अनेक महामान्य ऋषि महर्षि तथा मुनि महामुनि हो चुके हैं जैसे प्रथम दुःखके प्रतिकारक महर्षि पतञ्जलि महर्षि धन्वन्तरि इत्यादि अनेक हुए हैं। एवं द्वितीय दुःखके दमनकर्ता व्यास, वसिष्ठ, वामदेवादि अनेक हुए हैं। इन उभयविध दुःखप्रतिकारक महात्माओंने उभयत्र दुःख प्रतिकारक चिकित्सा ऐसी पूर्णरूपसे लिखी है कि, तत्पश्चात् भावी विद्वान्गणको अद्यावधि उसकी अपूर्तिका कभी सन्देहतक भी नहीं हुआ कारण इसमें यह है कि वे महर्षिलोग महायोगी दीर्घदर्शी तथा परमज्ञानी थे जो कुछ उन्होंने लोकोपकारार्थ विचार कियाहै वह सब योगबलके प्रभावसे पूर्णही कियाहै। अतएव आधुनिक

पुरुष उनका अपूर्ति पर्ण तो क्या करेगा उनके किये विचा-रमें इसका चंचु प्रवेश होनाही बहुत कठिन है उक्तमहार्षि सिद्धान्तानुकूल यदि किसी आधुनिकका किसी एकअंशमें लिखनेका साहसभी होताहै तो वह इसकी किंचिन्-ज्ञतासे ऐसा भद्दा लिखाजाताहै कि उसको सिवाय मूर्ख के किसी विचारशील पुरुषको देखनेकी श्रद्धाही नहीं होती कारण इसमें यही है कि, वह लिखनेवाला स्वयंही महार्षिके सिद्धान्तका मर्म्मज्ञ नहीं है। यद्यपि ऐसे २ व्यर्थ कागज-काले कर२के मरजानेवाले अनेक होचुकेहैं तथापि उनमें एक आधुनीक मानसिक चिकित्सकका लेख, ऐसा सम्भावित तथा परीक्षक मण्डलीमें समादरणीयहै कि, पशुप्राय प्राणी-के सिवायकौन वहपुरुषजो उसके सर्वप्रियसदुपदेशको श्रवण कर अपन शिरको अकस्मात् न फिरावे। यदि कोई पूँछेकि ऐसा आधुनिक कौन हुआ है तो हम उसको यही उत्तर देतेहैं कि एकही जगत् प्रख्यात महाराजाधिराज योगि-राज भर्तृहरिजी। क्यों न हो इनके परीक्षितार्थविबोधक विमल वचनोंका विज्ञमण्डलमें समादरणीय होना उचित ही है। क्योंकि अनुभव इनका भोगतृष्णातुर साधारण पुरुषोंकी तरह साधारण नहीं है किंतु सांसारिक सम्पूर्ण ऐश्वर्य वैभवसे क्रीत असाधारण हैं। अनेक प्रकारके मानसिक सन्तापकी जिस २ विचाररूपी

औषधिको उक्त योगिराजने स्वयं अनुभूत कर लिखा है वह ऐसे उत्तम ढंगसे कहाहै कि रुग्ण अधिकारीको सुनतेही आरामका सूचक रोमांच हुए विना नहीं रहता। उक्त योगिराजने अपने मनोहर वचनोंका शतक कहाहै। तथा उसको लोक उपकारक जान अनेक सज्जन पुरुषोंने संस्कृत तथा भाषामें कईएक व्याख्यानोंसे भूषितभीकियाहै. उनही व्याख्यानोंमेंसे एक पञ्चनददेशनिवासी कविवर हरिदयाल कृत व्याख्या वर्तमान कालमें विरक्त सज्जनगणमें अधिक समादरणीय है उचितही है उक्त कविराजने योगिराज के वचनोंको भाषा-काव्यमें ऐसा प्रगट किया है कि जिसको फिर २ बाँचकरभी पाठक पुरुषके चित्तमें संतोष नहीं होता प्रत्युत ऊपर नीचे उभयत्र देखकर संदेह पैदा होताहैकि योगिराज ऐसा बोलाथा या ऐसा?

वैराग्य जैसे सूखे विषयको लेकर भी अपने काव्यको अलंकारों तथा रसोंसे पूरित दिखलाना कोई साधारण पुरुषका काम नहीं है परंतु उक्त कविकी लोक भाषाकी कविता अपनेपर विरक्तोंको भी सरक्त करती हुई अपनी कर्ता स्वामीकी तथा अपने सर्वरूपसे निष्कलंकताकी बोधिका है। योगिराजने अपने शतकमें प्रायः १३ विषयोंपर लिखाहै भाषाकारने प्रत्येक विषयकी समाप्ति

पर अध्याय नियत कियाहै इनमें प्रथमाध्यायमें स्वमनको शिक्षा है १. दूसरेमें अपने बुरे स्वभावकी निन्दा तथा पश्चात्तापहै २. तीसरेमें कालकी महिमाहै ३. चौथेमे अपने चित्तकी उत्कंठा तथा शंभुके आगे प्रार्थनाहै ४. पञ्चममें विधाताको उपालम्भ दियेहैं ५. षष्ठमें सत्पुरुषोंके गुण कहेहैं ६. सातवेंमें तीन राजाओंके साथ वार्तालापहैं ७. आठवेंमें राजाओंके अभिमानकी निन्दा करीहै ८. नववेंमें अपनी अज्ञदशाका स्मरणहै ९. दशवेंमें सबको साधारण उपदेशहै १०. ग्यारहवेंमें स्त्रीकी निन्दाहै ११. बारहवेंमें वृद्धावस्थाकी निन्दा है १२. तेरहवेंमें संकीर्ण उपदेशहै १३. बस इन तेरह विषयोंका प्रदर्शक यह छोटासा ग्रन्थ उभय भाषाओंसे भूषितमानो उक्त विषयों- का चित्रहै अत एव साधारण रूपसे सकल सुज्ञसमाजमें तथा विशेष रूपसे साधु समाजमें इसको सत्क्रीति- पूर्वक प्रचलित देखकर मैंनेभी सज्जनसमाजके सेवाभागके भागी बननेके लिये तथा महात्माओंके वचनोंको प्रकाश कर पुण्य विशेषके लाभके लिये काशीनि- वासी निर्मल पं० स्वामी गोविन्दसिंहजीसे शुद्ध कराय तथा कठिन स्थलोंमें टीप कराकर पवित्र पुस्तकाकार छापकर सज्जनगणकी सेवामें नियुक्त कियाहै इति शम्.

ॐ

अथ श्रीभर्तृहरिकृत--

वैराग्यशतक।

कविवरहरिदयालकृतपद्यात्मक-

भाषानुवादसहित।

दोहा।

दुरद बदन दुर्जन दलन, मदन कदन शिवनंद।
एक रदन सुखसदन के, पाद पद्म प्रति वंद ॥ १ ॥

सवैया।

जिहिंशेष किसेजपैशैनकियो, पदकोमलकोमलती कमलाहीं। करमें दर[1] चक्र सरोज गदा, भृगुपाद[2] गरे स्रक्अंगद[3]बाहीं॥ जिहिंपादकोवारि[4]सुचारु[5]विचारधऱ्यो त्रिपुरारि[6] सदा शिरमाहीं ॥ असरूप[7]जिसेउरभीतरहै भवभीतर[8]है कछुताउरनाहीं ॥ २ ॥

---

१ शख। २ वक्षस्थलमें भृगुलत्ता। ३ भुजाओंमें भँवटा। ४ गंगाजल। ५ पवित्र। ६ शकर। ७ शेषशायी भगवान्का। ८ संसारका भय।

श्लोकः ।

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नाऽनंतचिन्मात्रमूर्तये॥
स्वानुभूत्येकमानायनमःशांतायतेजसे १॥
चूडोत्तंसितचारुचंद्रकलिकाचंचच्छिखा-
भास्वरोलीलादग्धविलोलकामशलभश्श्रे-
यो दशाग्रे स्फुरन्॥अन्तःस्फूर्जदपारमोह-
तिमिरप्राग्भारमुच्चाटयन् चेतःसद्मनि
योगिनां विजयते ज्ञानप्रदीपो हरः ॥ २ ॥

अब दो श्लोकोंकरके मंगलाचरणको कहता हूँ- दोहा ।

शांत प्रकाश स्वरूप प्रति, नमो सर्वदा होय ।
सृष्टि स्थिति लय क्षोभविन,रवि शशि भासकसोय ॥
दिक्कालादि प्रच्छेद[१] बिन, चिदानंतवपु जोय ।
स्वानुभवैक प्रमाणतिहँ, नमो काव्य इति होय ॥

अथ शिवोपमा--तोटक छन्द ।

हरज्ञानप्रदीपसदालसके। मन मंदिरयोगिनकेवसके॥
बहुमोहउदैजुह्नदैतिनके।तमपुंजवहीतिहँकोहनके ॥५॥
पुनिलोलअनंगपतंगमहा। क्षणमाहिंस्वभावकताहिंदहा

१ चिदात्मा के व्यापक होनेसे देशसे अन्त नहीं है नित्य होनेसे कालसेभी अन्त नहीं है, चिदात्मा ही को सर्वरूप होनेसे वस्तुमेभी अन्त नहीं है ऐसे तीन प्रकारके प्रच्छेद(भेद)से रहित चिदानन्तस्वरूप ब्रह्मअपना आपहै।

निहकामसमूहगुणाग्रदिपै।सुमनेहसनेहवहीअरपै ॥ ६ ॥
जिनकेअतिभालकिभागभले।असदीपकतामनधामजले॥
जिहँभूपणभालमयंकसही । कलिकाकलदूजकलंकनहीं
बिंबतासशिखासुप्रकाशसमंदिनगतिविभातिप्रशांततमं
पुनतीनगुणोंयुतदेवत्रये । दृगतीनकिनैननमिएनकये॥८॥
सतसंगवसे हरिनेत्रसजे । सरजोअजलोचनदूजसजे ॥
आगनाक्षविषेनिजहैसतमो ।भवपालग्रसेअसईशनमो ९

दोहा ।

भरत शतक वैरागको, भाषकार हरियाल।
केवल प्रेम हुलास उर, लखन कविनकी चाल ॥१०॥
अर्थ बरन वृत बरन युत, भूप बचन शिव ऊप ।
बालव्याह की गालि सम, दूषण भूषण रूप॥११॥

कवित्त ।

सोम नाम विप्र वर गिरिजा के वर कर,
लीनो सुधाफल कर दीनो नरनाहके।
भूपति स्वपतनी को राणी निज मीतहीके
ताने दीनो गीतकीको नीको फल चाहके ॥
आगे गणिका सगरे धरापति आगे धरा,
नरनाथ माथ धुना सुनधुना ताहके ।

---

१ विष्णु । २ ब्रह्मा । ३ व्याहारके रहनेवाले कविलोगोंकी अथवा लेशमात्र । ४ यद्यपि मेरे कथनमें अर्थ वर (श्रेष्ठ) नहीं है तथा (वृत्त) छंद भी वर नहीं है तथापि शिवजीकी उपमा वाले राजाके वचनोंका उल्था है ।

हाहा कामिनी के हित हते कामिनी के अन्न,
ताहि तजों ताहि भजों शीश शशि जाहके ॥१२॥

श्लोकः ।

यां चिंतयाम्यनुदिनं मयि सा विरक्ता
साप्यन्यमिच्छति नरं स नरोन्यसक्तः ॥
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च३

सवैया ।

जिनकोनितमैंचितमोचितमोतिनकीगतिमोतनमाहिं
रतीना । वहआनपुमानकिसंगरतीपुनितामनमेंगणि-
का गृहकीना॥धिकहै अबलाभृतकंदरपे अरुमोहिंवि-
कारजुमारे अधीना ॥ इति रीति समूहकि प्रीति तजी
नृपहोय युगीश्वरईश्वरचीना ॥ १३ ॥

दोहा—भन्योभूपवैराग्यशत, निजमन शिक्षा हेतु ।
सुनोजनोशुभगिरातिहँ, जगतजलधिमहिसेतु १४ ॥

सोरठा ।

अतिनदवत गंभीर, श्रीहरिभर्तृ विरागशत ॥
जन्ममरणभयनीर, विकसतकमलश्लोकगण ॥१५ ॥

---

१ स्त्री । २ नौकर । ३ कामदेव । ४ कामदेव । ५ समुद्र ।
६ पुल ।

कवित्त ।

दोषदृष्टि नालि गुरु दल पद लघुपर,
अंकमात्रा तरीतर अरथ सुवासहै ।
डाटे काँटे मंद संग इंदुहेर निषपंद,
अरक विवेकके प्रकाशते विकाशहै ॥
भोगी भूँड भोग मल भोगत न तजैपल,
संतन को मन अली सेवे सदा तामहै ।
ऐसो नर आँखों सों विलोकों नाहिं जाहिं आखों,
भाखोंनिजमनहींको वाक्यभवनाशहै ॥ १६ ॥

दोहा ।

श्रुतिवक्ता भुक्ता अवनि, बहुर इतर बहुलोक ।
तिनहिंविलोकनसकहिंतिन, सुभगसगेजश्लोक १७ ॥
तिनके अन अधिकारको, करके प्रगट बहोर ।
श्रीहरिभर्तृ स्वचित्त प्रति, भनतसुवचननिचोर॥१८॥

---

१ सांसारिक पदार्थोंमे दोषदृष्टि होनी यही श्लोक रूप कमलोंकी लम्बी नाली है । भीतरके पत्तोके स्थानापन्न श्लोकोंके पद हैं, बाहरके छोटे पत्रोंके स्थानापन्न श्लोकोंके अक है । वर्णोंकी मात्रा स्निग्धतरी रूप- हे श्लोकका अर्थ सुवासरूप है अधिकारीको डाटना ताडना यही श्लोक- रूप कमलोमे कांटे है और कुसगरूप चन्द्रको देखकर यह श्लोक- रूप कमल खिलते भी नहीं विवेकरूप सूर्य्यके सामने अर्थात् विवेकी पुरुषोंमें यह श्लोकरूप कमल प्रकाशतेहै इसी रीतिसे सारा रूपक बना लेना ।

श्लोकः ।

बोद्धारा मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मय-
दूषिताः ॥ अबोधोपहताश्चान्ये जीर्ण-
मंगे सुभाषितम् ॥ ४ ॥

कवित्त ।

ग्रंथनके ज्ञाते माते मतसर कीच बीच,
धगनाथ मद माथ भरे दरशात हैं ।
दूषण चमोरें मांहि भूषण सुभाषण को,
पंडित भूपाल तो न सुने मेरी बात हैं ॥
पुनः आन जंतु जेते दुखी मूढ दीन तेते,
मोते सकुचात हम ओते सकुचात हैं ।
पात्रविना भाखे राखे हवन को राखे तैसे,
जीरणमो गात मो सो बात होत जात हैं ॥ ११ ॥

सोरठा ।

वक्ताहै नृप आप, श्रोता निज मनको कियो ।
रुद्र श्लोक अलाप, कियो अचल निहताप चित ॥

श्लोकः ।

भ्रांत्वा देशमनेकदुर्गविषमं प्राप्तं न किं-
चित्फलं त्यक्त्वा जातिकुलाभिमानमुचि-
तं सेवा कृतानिष्फला॥ भुक्तंमानविवर्जितं

१ छारेग । २ ग्यारह ।

परगृहे साशंकया काकवत्तृष्णे जृंभसि
पापकर्मनिरते नाद्यापि संतुष्यसि ॥ ५ ॥

कवित्त ।

दुग्गम विषम अशेष देश भ्रम कर,
लह्यो मैं कलेश गह्यो लेश नाहिं धन को ।
जाति कुल काभिमान उचित विहायताहिं,
सेवा कीनी फलहीनी शोचभयो मन को ।
काकयों सशंक[१] मान विन परधामखायो,
अजे गजे न सप्रीत भजे दुरतंन को ।
ब्रह्मते विछोर नीच तृष्णा कीनो ढोर अब,
होर जो नचात कहा होर करें जनको ॥ २१ ॥

खलोल्लापाः सोढाः कथमपि तदाराध-
नपरैर्निगृह्यांतर्बाष्पं हसितमपि शून्येन
मनसा ॥ कृतश्चित्तस्तंभः प्रतिहतधिया-
मंजलिरपि त्वमाशे मोघाशे किमपरमतो
नर्तयसि माम् ॥ ६ ॥

पुनः वही कवित्त ।

आशे फलहीनी कीनी तेरे बलसों सेवादि,

१ सहित शंकाके २ पापियोंको या पापोंका ।

मूढोंके कुबैन सोंढे नैन छोडें वैनको ।
चित्तको संकोच कीनो कहूगसों रोकलीनो,
भावीशोक चीनो पीनो कानो न वचनको॥
हस्योभी निकार दंत जैसे चितामान जंत,
जोर कर कर करी बंदना नीचनको ।
तैसे नमों करो तुमें तेरे संग चिर प्रेम,
अब चाहे छोर हमें काहे दाहे जनको॥२२॥

श्लोकः ।

उत्खातं निधिशंकया क्षितितलं ध्माता गिरेर्धातवो निस्तीर्णः सरितांपतिर्नृपतयो यत्नेन संतोषिताः ॥ मंत्राराधनतत्परेण मनसा नीताः श्मशाने निशाः प्राप्तः काणवराटकोऽपि न मया तृष्णेऽधुना मुंच माम् ॥७॥

तोटक छंद।

अबतो तजतूहमकोतृषने।तवलाभविषेममखेदघने॥
तुम कीन मुझे मनवासजबे । घनशंकउठीउरमोरतबै॥
सभकोवितहैसभ भूमतले। हमखोद थके परजंत जले॥
गिरिधातुकृशानुप्रतापदही। अबलाभरसायनहोयसही

१ महारे । २ जल । ३ मेत्राका जल । ४ हाथ । ५ दाम ।

हमसिंधुतरेमुकतादिसुने।मुकतादिकहाँशुकत्यादिलुने।
बहुभूपनकोयतनोकरके। अतिकीन प्रसन्नलजाहरके ॥
करचित्तइकाग्रकुमंत्रजपे। शमशाननमेंनिशिपुंजखपे ॥
करहोंजबमैंवशिभूतनको। परकोहरदेहिंविभूतिनको ॥
इमआयुवृथाममहंतसभी।मुहिकाणवराटकभीनलभी ॥
कतकाजनिलाजअकाजदहो।तजमोहिंकहूँअबओनगहो

सोरठा।

कन्यो बह्नंत जीव, चाहे अब चाहे कहा।
किधों करे निरजीव, आशे तवआशय कवन॥२८॥

श्लोकः।

परिभ्रमसि किं वृथा क्वचन चित्त विश्राम्यतां स्वयं भवति यद्यथा भवति तद्यथा नान्यथा ॥ अतीतमपि न स्मरन्नपि च भावि संकल्पयन् अतर्कितगमागमाननुभवस्व भोगानिह ॥ ८ ॥

पुनः सवैया।

शांति निजांतर किंनगहे कतडोलें वृथाभवमो सघेना।
होय यथा सुतथा निजहै तुमते अन्यथाबहुहोवतना॥

---

१ किसी दूसरेको ग्रहण करो। २ बहुत ही। ३ जो भावी है सो तेरेसे टलनेको नहीं है।

प्रीतिनसाथवितीतभलीकछुहाथमिलीनयथास्वपना ।
मौनं गहो अबमो नगहो तुम भोगगिरा जिन भोगमना
भाविकि भाव अभाव यथा नरमोतिनमोनभकेसुमना
मध्यकि भोगकिमध्य रमोगतराग भ्रमो अनउत्तरना॥
ब्रह्म नपुंसक यों मनतू विनतां तबदंपति मोसुखना ।
टेरत मैं प्रतिफेर तुमैं तुम मोमतकोमत फेरमना॥३०॥

श्लोकः ।

परेषांचेतांसिप्रतिदिवसमाराध्यवहुधाप्र-
सादे किंनेतुं विशसि हृदयक्लेशकलिलम्।
प्रसन्ने त्वय्यंतः स्वयमुदितचिंतामणि-
गुणे विविक्तः संकल्पः किमभिलषितं
पुष्यति न ते ॥६॥

पुनः कवित्त ।

चित्त रे तूं वित्तके निमित्त दिन रात नित्य,
सेवत परोंके चित्त एही दुःख अति रे ।
तिनोंकि जो मुदता सो उदत कलेशोंकर,

१ विश्रांतिग्रहण करो।२ भावीहोनेवाले पदार्थ न हुए जैसे हैं उनके साथ प्रेम करना मानो आकाशके फूलोंकी गंध लेनेकी इच्छा करनी है । ३ विना ब्रह्मके तेरेमें या तेरी स्त्री तृष्णामें सुख नहीं है । दम्पति नाम स्त्रीपुरुषका है । ४ धनके लिये । ५ उत्पन्न होतीहै ।

मत मान करे हत ताको ताको मत रे ।
निज चिंता तज सोवे स्वांतर प्रसन्न होवे,
चिंतामणि गुण जोवे देहमें महत्तरे ।
ताते अभिलषित न तेरो किधों सिद्ध होय,
सुधापान करेते न किधों व्याधि हरे ॥ ३१ ॥

दोहा ।

तनुमो तनक निवास तव, चिंतामणि तज ताहि ।
बहिरकृपणगृह परभर्व, सहितद्रविणि हित काहि ३२

श्लोकः ।

एतस्माद्विरमेंद्रियार्थगहनादायासका-
दाश्रयात् श्रेयोमार्गमशेषदुःखशमन-
व्यापारदक्षं क्षणात् ॥ शांतं भावमुपेहि
संत्यज निजां कल्लोललोलां गतिं मा-
भूयो भज भंगुरां भवरतिं चेतः प्रसीदा-
धुना ॥ १० ॥

पुनः कवित्त ।

इंद्रियोंके भोग सारे भारे रोग देन वारे,

---

१ उनकी तरफ देख मत । २ सतोपरूपगुण । ३ अमृत । ४ निरादर ।
५ धन ।

ताको कीजे हेयं मत श्रेयपथ तज रे ।
पापअद्रि नाशनको वज्र पाकशासनिको,
दाहेदोप घासन को मोक्षशिखी सज रे॥
हूजो शांत भावबीच प्रापतकदापिनीच,
आपनी कलोल लोल गतिते नलज रे ।
क्षणभंग भवरोग ताको मन करो त्याग,
मोक्षको वैराग्य महकारी तास भज रे ॥ ३३॥

श्लोकः ।

मोहं मार्जयतामुपार्जय रतिं चंद्रार्धचू-
डामणौ चेतः स्वर्गतरंगिणीतटभुवामा-
संगमंगीकुरु ॥ को वा वीचिषु बुद्बुदेषु
च तडिल्लेखासु च स्त्रीषु च ज्वालाग्रेषु च
पन्नगेषु च सरिद्वेगे च प्रत्ययः ॥ ११ ॥

पुनः कवित्त ।

परवारके सनेह को निवारदेहि मन,
बीचीबुदबुदे रेखा दामनी समानिये ।
पुना दीपतागनिमें नागनमें नदीवेग,
माहिं जैसे सुखनाहिं तैसे ताहि जानिये ॥

---

१ अर्थात् इन्द्रियोंके भोगोमे (हेय) त्याग बुद्धिकर और श्रेय पंथको मत छाडे । २ पाप रूपपहाडोके नाशार्थ। ३ इन्द्र । ४ अग्नि। ५ चचल ।६ विजली

देवनदी तीर की पवित्र धरा पर पैठ,
नील कंठमाँहिं नीत उतकंठा ठानिये ।
अब ऐसी रीति करो भोगनकी प्रीति हरो,
गुरुवेद वाक्य धरो तीनताप हानिये ॥ ३४ ॥

श्लोकः ।

आक्रांतं मरणेन जन्म जरया यात्यु-ज्ज्वलं यौवनं संतोषी धनलिप्सया शम-सुखं प्रौढांगनाविभ्रमैः ॥ लोकैर्मत्सरि-भिर्गुणा वनभुवो व्यालैर्नृपा दुर्जनैरस्थै-र्येण विभूतिरप्यपहृता ग्रस्तं न किं केन वा ॥ १२ ॥

पुनः चौपाई ।

जन्ममहावरग्रस्योमरणकर।अधकोजधज्योमृगकोनाहर
पुनिनिर्मलअतियुवानुकूला । जराकरातौकोनिर्मूला ॥
दुरिहरतज्योंतुरतगंगाजल । कलहंरोनज्योंकरमौनबल
पुनिधनचाहिग्रस्यो संतोषा ।यज्ञविपाक ग्रसेज्योंरोषा
तरलतरुणतरुणीकेलोचन। ताहिविभ्रमहिसमसुखमोचन॥

१ गंगाजी । २ महादेव। ३ सिंह । ४ अर्थात् मौनके बलसे जैसे लडाई मिटजाती है । ५ चञ्चल ।

ज्यों निरखेद खेद भवहारे। पुना सनोज्यौंरजतमटारे॥
असेगुणीकेगुणकोखलईंउ।अज्ञविचारविकारअ्रेजिंउ॥
आस्योईंउँक्षितिकोउरगादिकालाजत्रासकोज्योंकामादिक
असत दुर्जनोंकर नृप जैसे।गिलेप्रश्नको उत्तर जैसे॥
सकलविभूतिअनस्थिरताने।अर्मोसर्गीपोज्योचिंताने॥
इसप्रकारजनकेके नाँहीं। अस्त कालकरयाभव मांहीं॥
अज पिपीलिका लगजगजेतो।ग्रस्तसमस्तकालकरतेतो॥

दोहा।

सकल भोग भवहेतु मन, चपलसदोपमशोक।
ना तज भोगी जनोयुत, गुरु श्रुतिपंथ विलोक ४१

श्लोकः।

अग्रे गीतं सरसकवयः पार्श्वतो दाक्षिणात्याः पृष्ठे लीलावलयरणितं चामरग्राहिणीनाम्॥ यद्यस्त्येवं कुरु भवरसास्वादने लंपटत्वं नोचेच्चेतः प्रविश सहसा निर्विकल्पे समाधौ॥ १३॥

---

१ विचारशीलकी बुद्धि। २ हे चित्त मनरके सभी भोग अति चञ्चल शोकके देनेवाले तथा अनेकप्रकारके दूषणोंयुक्त होनेसे ससारहीके हेतु है इसलिये उनको भोगीजनोंके सहित त्यागकर।

पुनः नाराच छंद ।

विचित्र राग रंगजे स्वअग्रभागमें बने ।
कविंद आस पासमें रसाल वाक्य जे भनें ॥
प्रवीन चारु कामिनी जि पृष्ठ भागमें लसे ।
अलंकृती मनोहरी मुखारविंदते हँसे ॥ ४२ ॥
करे ग्रहीत चामरं विलाससों भ्रमावती ।
तिने करे करे हले करे ध्वनी स्वभावती ॥
अरोग देह आयुषा महा अशुत्र राज है ।
जबै समीप आपने लखें इतो समाज है ॥४३ ॥
प्रपंच भोग स्वादमें निशंक तो अबी रमो ।
भवे तथा न तो कहाँ वृथा इते उते भ्रमो ॥
असंग विश्व ते भवो अरण्य वास लीजिये ।
असंप्रज्ञात मै मना प्रवेश शीघ्र कीजिये ॥ ४४ ॥

श्लोकः ।

पुण्यैर्मूलफलैः प्रिये प्रणयिनि प्रीतिं कुरुष्वाधुना भूशय्यानववल्कलैरकरणै-रुत्तिष्ठ यामो वनम्॥ क्षुद्राणामविवेकमूढ-मनसां यत्रेश्वराणां सदा चित्तव्याधिवि-वेकविह्वलगिरां नामापि न श्रूयते ॥ १४ ॥

पुनः कवित्त ।

भूमि सेज मूल फल मेध्य[1] नव वलकल,
करणे नपरे देव आगे रच धरे हैं।
करो इने साथरति प्यारी प्रेम वारी मति,
उठोउठो तामें अब जामें विषे[2] ठरे हैं ॥
तुच्छ अविवेकी शठ मूढ मन बोल कटु,
जाके चित्तचिंता आगकर सदा जरे हैं ।
ऐसे धनवाननके नाममात्र काननमें,
जाति माहिं काननमें कबूं माहिं परे हैं ॥ ४५ ॥

दोहा ।

शब्द खलोंके नामके, परें न करण मझार ।
ऐसे निर्जन वन विषे, बसो बुद्धिवर वार ॥ ४६ ॥

श्लोकः ।

पातालमाविशसि यासि नभो विलंघ्य
दिङ्मण्डलं भ्रमसि मानसचापलेन ॥
भ्रांत्यापि जातु विमलं कथमात्मनीतं
तद्ब्रह्म न स्मरसि निर्वृतिमेपि येन॥१५॥

---

१ पवित्र नवीन वृक्षोंकी छालके वस्त्र । २ शीत, उष्ण, हर्ष, शोक, राग द्वेष इत्यादि द्वन्द्व ठरे अर्थात् जहा नहीं है ।

पुनः सवैया ।

शठजाहिं पतालकुशून्यकुलाँघकिशूनोफिरैंदिगमंडलधावत । विनभाग्यमिलेनधनादिसुखंतवचंचलता दुखहेतुजनावत । ततब्रह्मनिजातमशुद्धमनाभ्रमसोपि कबीसुखहेतुनध्यावत । तवद्वंद्वजवैभवसिंधुतबेतव शांतभयेविनशांतनआवत ॥ ४७ ॥

टीका--चौपाई ।

मूढ करे पाताल प्रवेशा । देख्यो चाहें देशफणेशा॥ विष्णुसहस्रनाम नवतनको । भापेशेषपिखोंतांतनको ॥ फणसहस्रपरमणिअवतंसा । भासहितमध्वंसकसमहंसा ॥ ल्यावोंकिवेंएकमणिहरके । नाशैं सबकलेश तवघरके ॥तहँतेमूढशून्यमुडआवहिं । पुनाकाशको लाँघसिधावहिं॥सुरपतिलोकविलोकनकारण । सुधा तडागकल्पतरुवारण ॥ सुरभीनंदनवनउपवनको । दरशोंसुरनसहितवाहनिको ॥ बैशपाकशासनसिंहासन । करैंकवनविधिविबुधहिंशासन ॥ किवेंपरेममतहँपरचोजब । निजगृहपठवोंदिव्यभोगतब ॥इतरीतो उतरीतोआवहिं । पुनिदिगमंडलकोउठधावहिं ॥ दुर्गमविषमअदर्शीठौरहिं । द्रव्यनिमित्तनिरंतरदौरहिं ॥ चित्तचपलताकरअहनिशिमैं । भटकहिंव्यर्थकहाँदशदिशिमैं॥ततनिर्मलब्रह्मातम रूपा । साक्षीशुद्धअसंग

अनूपा ॥भ्रमकरभीकबहूँकहुँरीते । नहिंसिमरसिनिज ब्रह्मअभीते ॥ व्यष्टिसमष्टिउपाधिभेदकर । जीवेश्वर- कीद्विधाभिधापर ॥ मायाऽविद्यामलमिलभासे । मुग्धोंके उरमांहिंप्रकाशे ॥ तदपिसुविमललखेतिहँ निर्दुख । जाँहिपिखेनशजाहिंनिखिलदुख ॥ जासला- भकरलाभअपरना । जासुखकरसुखअवरनवरना ॥ एकवारहै दर्शन जाको । देखनयोग्यरहेपुनिनाको ॥ जासरूपह्वैकरभवमांहीं । इतररूपपुनिहोवतनाहीं ॥ जोसर्वैकसमानसमाना । तौमैंभी सो रम्यो न आना॥ त्वंनसर्वते अन्यतजाते। वहीरूपतबनिश्चयताते॥५८॥ ब्रह्म सर्वमो पूरणजैसे । सर्वविषे तुमपूरण तैसे ॥ जाते श्रुतितवब्रह्मबखाना । ताते तववपुयांभवनाना॥ भूतन- कोहैपूतअमूतन । जडपरिणामिनाशसमृदजन ॥ चेतनइकरस अव्ययआतम।ताबिनजडसंघातअनातम॥ सतोअंश भूतनकी जोहै । ताते अंतःकरण भयो है॥ रागद्वेषको घोषसुजाते।सोपिगावरो रूपनताते ॥६१॥ कारजद्वाराजिहँ अनुमाना । नातरसोप्रत्यक्ष अभाना॥ बिंबोपाधिकोकारणजोहै।कारण देहनआतमसोहै६२॥ तीनोंपाधिविहीनो जोऊ ।रूपतुम्हारो निश्चय सोऊ॥

---

१ यह शरीर पंच भूतोंका पूत अर्थात् पुतला है । २ घर । ३ तुम्हारा ४ स्थूल तथा लिंगशरीर रूप उपाधिद्वय । ५ सुषुप्तिअवस्था । ६ कारण ।लिंग और स्थूल ।

नहिंततब्रह्मरूप निजध्यावें।जाकरमूढमुक्ति तू पावें ६३

दोहा ।

रे मन तज निज बहिर्गति, अंतर्वर सुखहेत ।
अंतर्मुख विन सुखनहीं, विदित सनातननेत ॥ ६४ ॥

श्लोकः ।

चेतश्चितयमारमां सकृदिमामस्थायिनी-
मास्थयाभूपालभ्रुकुटीकुटीरविहरद्व्यापा-
रपण्यांगनाम् ॥ कंथाकंचुकितः प्रवेश्य
भवनद्वाराणि वाराणसी रथ्यापंक्तिषु
पाणिपात्रपतितां भिक्षामपेक्षामहे ॥१६॥

पुनः कवित्त ।

चंचलाको मत चित चंचल करति चित्त,
चंचलाको चीन चित्त चंचलाके वतहै ।
भूपनकी भ्रुकुटी कुटीमें वारवधूवत,
गतागतके व्यापार विच विचरतिहै ॥
काशीजूकी. वीथिनके जूथनेमें धाम ग्राम,

---

१ हे पुरुष चचल जो लक्ष्मीहै उसका तू चिन्तन मतकर वह वृथा तेरे चित्तको चचल करेगी परन्तु तेरेको मिलेगी नही और चित्तका यह स्वभाव है कि यह लक्ष्मीको देखकर तत्स्वरूप होजाताहै । परन्तु वह राजालोगोकी भौंहांरूपी कुटियामे वारवधू वेश्याकी तरह इधर उधर भ्रमण करती है अर्थात् तेरेको मिलना उसका बहुतही कठिनहै ।

ताके द्वारे अटों ओढ़ कंथा एसो मतिहै।
ताते पाणिपात्रपरे भिक्षा तासों प्राणधरे,
कमला कीरति लोक कमला करतिहै॥ ६५॥

दोहा।

श्रीहरके श्रीहर पुरी,बाराणसिको वास।
जीवत भुगतमुकतमरे, करे चहो चित तास॥६६॥

श्लोकः।

उद्यानेषु विचित्रभोजनविधिस्तीव्राति-
तीव्रं तपः कौपीनावरणं सुवस्त्रममितं
भिक्षाटनंमंडनम्॥आसन्नंमरणं च मंगल-
समं यस्यां समुत्पद्यते तां काशीं परिहृ-
त्य हंत विबुधैरन्यत्र किं स्थीयते॥१७॥

पुनः कवित्त।

उपवनों मध्य सिद्ध भोजन विविधविध,
तप वृद्धहूँते वृद्ध जा समै प्रधानहै।
पटलकौपीनहीको अप्रमानपटनीको,
भीखहीको रत्नणीको रटनो प्रमाणहै॥
चारखाणी प्राणी जामें मरके न फेर जामैं,
आवै ढिग मृत्यु तामें मंगल समान है।

छोरे ऐसी काशी कैसे सुधी और ठौर बसे,
कैसे भयेदेव यम हासीको सथानहैं ॥ ६७ ॥

दोहा ।

अज्ञ त्यजहिं वाराणशी, तऊ न खेद कछु मोहि ।
त्यजहिं सुजन लखमुक्तिप्रद,दुसहदुःखममओहि ६८॥
रे मन तू तो त्याग जिन, मुक्तद्वार हरद्वार ।
सिमर सरित समगरितिहिं,जगजीवनदिनचार ॥६९॥

श्लोकः ।

नायं ते समयो रहस्यमधुना निद्राति नाथो यदि स्थित्वा द्रक्ष्यसि कुप्यति प्रभुरिति द्वारेषु येषां वचः ॥ चेतस्तानपहाय याहि भवनं देवस्य विश्वेशितुर्निर्दौवारिकनिर्दयोक्त्यपुरुषं निःसीमशर्मप्रदम् १८

पुनः कवित्त ।

भूपनकी चाहिकरे काहेचित जाहि घरे,
गये छरीदार हरें सतकार जोतहैं ।
नारे इहकाल महीपाल गुरुमतेमांहिं,

---

१ अरे नीच भिखारी !यह काल तेरा नहीं है क्योंकि राजा इसकालमें गुरुमते) किसी विचार विशेषमें है । दुबारा गये तो अभी समोनाहि क्योंकि नरनाथ सुखपूर्वक आरामसे सोरहे है ॥ तेरे भीख मागनेके वचन जब सुनेंगे तो तेरेको वह क्रोधदृष्टिसे देखेंगे । इत्यादि अनेक तरहके कटुवाक्य जिनके द्वारोंपर सुनेजातेहैं ।

अजे समोनाहिंनरनाथ सुखी सोतहैं ।
सुने बैन तेरे जब क्रोध नैनहेरे प्रभु,
जाके पौरे ऐसे कौरे वाकको उदोतहैं ।
छोरताके पौरदौर मोक्षठौर काशीमांहिं,
ध्वनान कठोर जहां दौरप[1] अगोतहैं ॥ ७० ॥

दोहा ।

अप्रमाण आनन्दप्रद, पुनः जन्म जिहँ हान ।
वसो मना आनन्दवन, तज नृप कृपणस्थान ॥ ७१
अलं भरतवैराग्यको, प्रथमोऽध्याय अनूप ।
स्वमन शिष्यको शिक्षमत, दईस्वामिसमभूप॥७२॥

दोहा ।

द्वितिये पश्चात्तापके, भाषे दशक श्लोक ।
जाके श्रवण मनन करे, नष्ट होहिं मन शोक॥ १॥

श्लोकः ।

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसार-
विच्छित्तये स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्ध-
र्मोपि नोपार्जितः ॥ नारीपीनपयोधरोरु-
युगलं स्वप्नेपि नालिंगितं मातुः केवल-

---

१ जहांके दौरप अर्थात् द्वारपाल गण अगोत अर्थात् जाति गोत्रके पक्षपाति नहीं है अथवा दौरप शब्दसे दौरे हुयेके पालक महादव पक्षपाती नही है ।

मेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम् ॥ १९ ॥

कवित्त ।

पादकंज शिवजीके न अराधे हम नीके,
कारण उधारजीके रमणीके चीनमें ।
नाके[1]पौर ताकनके धाकनमे पुण्य दक्ष,
तेपि न एकत्र कछु कीन भागहीन में ॥
उभैपीन कुची नारी भागी रूपगुणवारी,
स्वप्ने मझारीभी आलिंगन न कीन में ।
माताको योवन वन तास नाश हेतु जन;
केवल कु[2]ठार होय खोये सुख तीन में ॥ २ ॥

श्लोकः ।

विद्या नाधिगता कलंकरहिता वित्तं च नोपार्जितं शुश्रूषापि समाहितेन मनसा पित्रोर्न संपादिता ॥ आलोलायतलोचना युवतयः स्वप्नेपिनालिंगिताः कालोयं परपिण्डलोलुपतया काकैरिवप्रेरितः॥ २० ॥

पुनः नाराच छंद ।

अदोष वेद बोधको अधेन मैंन कीनहैं ।
न सेव मात तातकी मँझारचित्त दीनहै ॥

---

१ स्वर्ग । २ कठोर ।

दया न दीनजंतुपै करी मनाकमैंकबी।
न न्यायवंत द्रव्य भी इकत्र कीन लोअंबी ॥ ३ ॥
विशाल नील कंजनैन चंचले हृदेप्रिया।
न कीन सोपनेपि मैं अलिंगनं महात्रिया॥
प्रपिंडपै सलोभ काक योंसमो गतोहमें।
विकाश मात आस्य कंज नाशको करी जमें ॥ ४ ॥

श्लोकः।

धिक्तज्जीवितमापदांहिनिलयंपित्रासबं-
धूज्झितं दीनानाथजनोपकारकरणव्या-
पारदूरीकृतम् ॥ मंदीभूतशशांकशेखर-
पदद्वंद्वारविंदस्मृतिं व्यालोलायतलोच-
नास्तनतटप्रश्लेषविश्लेपितम् ॥ २१ ॥

पुनः कवित्त।

ता जीवनको धिक्कार जोऊ दुःखको अगार,
पितृ बंधु परिवार कर नित जित्तं है ॥

---

१ थोडीसी। २ अभीतक। ३ स्वप्नमें। ४ केवल पराये पिण्डोंपर लुब्ध होनेवाले कार्कोंकी तरह हमारा व्यर्थ समय गया है। इसलिये हम अपनी विकाशमाता अर्थात् कीर्तिमाताके मुखकमलके विनाशकेलिये करी) हस्ती रूप पैदा हुए है।

दीनानाथ जनोंपर उपकारको व्यापार,
ताको त्रिसकार जाँमझारनित्य थित्तहै ॥
जाके भाल बिषे इंदु द्वंद्वतापदारविंद,
ताको ध्यान जाँमोमंदभूतनिंदानित्तहै ।
अलंलोललोचन विशालकुचतटत्रिया,
ताको मैं लाभीनभयोयोंहीवेलावित्तहै ॥ ९ ॥

श्लोकः ।

नाभ्यस्ता भुवि वादिवृन्ददमनी विद्या
विनीतोचिता खड्गाग्रैः करिकुंभपीठ-
दलनैर्नाकं न नीतं यशः॥कांताकोमल-
पल्लवाधररसः पीतो न चंद्रोदये तारुण्यं
गतमेव निष्फलमहो शून्यालये दीप-
वत् ॥ २२ ॥

पुनः कवित्त ।

वादीवृंदके दमन वारी प्यारी संतनको
ऐसी विद्याकोशलोक पढ्यां मैंन लोकमैं ।
खड्गोंके अग्रकर करीकुंभ पीठनको,

---

१ जिस जीवनमें ऐसे शंकरका ध्यान मन्द अर्थात् नहीं है और भूत प्राणियोंकी निन्दा जिसमें नित्य होतीहै । २ भूषित तथा चचन्लहै नेत्र जिसके ।

पीठके न यश नीठ कीनो सुरलोकमें ॥
कांताके अधर मृदु दलवत रसनिधि,
सोन चूसे उदेविधु स्वेच्छित अशोकमें ।
ज्ञान नाक नारी तीनों कोन रसलीनो अहो,
वृथा युवाक्षीनो जैसे दीप शून्य ओकमें ॥ ६ ॥

श्लोकः ।

अजानन्माहात्म्यं पतति शलभस्तीव्रद-
हने समीनोप्यज्ञानाद्बडिशयुतमश्नाति
पिशितम् ॥ विजानंतोप्येते वयमिह
विपज्जालजटिलान्न मुञ्चामः कामानहह
गहनो मोहमहिमा ॥ २३ ॥

पुनः कवित्त ।

दीपमें पतंग परे जरेन प्रतापजाने,
मीनस अज्ञानेभखे कुंडीमिले मांसको ।
गजगजी हेत पर्‍यो खात खात अंकुशको,
रागमें कुरंग रंग करेनिजनाशको ॥
पंकज की गंध बीच नीचभृंग मीच गहे,
इति आदि अज्ञ नाश करें निज श्वासको ।

---

१ स्थित । २ अपनी इच्छाके अनुसार शोकसे रहितहोकर । ३ घर ।
४ रागमे (कुरग) हारिणका राग कहिये प्रेमहै।

अहोहा सघन महामोहको प्रताप लहा,
शुभाशुभ जानो पै नहानो भोग आशको ॥ ७ ॥

दोहा ।

मोहंमहातम रूपको, गहन महामत आहि ॥[1]
मोहे पुरुष महातमा, जिहँविवेक रवि नाहिं ॥ ८ ॥

श्लोकः ।

ज्ञानं सतां मानमदादिनाशनं केषांचिदेतन्मदमानकारणम् ॥ स्थानं विविक्तं यमिनां विमुक्तये कामातुराणामतिकामकारणम् ॥ २४ ॥

सवैया ।

एश्रुति ज्ञान सुजाननके अभिमान मदादि विकार निवारे । केचित मोसम नीचनके चितमो बहु मान मदादिक धारे ॥ शून्य यथा मठ साधुनको अतिमोक्षको साधन दोष प्रहारे॥सोहमसे मदनातुरकोअति कामको कारण वामे समारे ॥ ९ ॥

श्लोकः ।

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वापि विषया-[2]

---

१ महा अज्ञानरूप मोहकोधारण करना हमारी मूर्खताहै इस मोहरूप अन्धकारने अनेक महात्माओको जिनके पास विवेकरूप सूर्य्यका उजाला नहीं है अन्धकूपमें डाला है । २ सुन्दरस्त्री ।

न्वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यस्त्वयममून् ॥ व्रजंतः स्वातंत्र्यादतुल-परितापाय मनसः स्वयं त्यक्ता ह्येते शम-सुखमनंतं विदधति ॥ २५ ॥

पुनः कवित्त ।

पुण्यनके वश्यते सुभोगचिरवमते,
नि[१]मित्तिनशे नशते मर्याद आदि दिनमें ।
कौन भेद भोगन के भेदमैं नतजे जन,
एक[२]को वियोगतो अवश्य होत तिनमें ॥
स्वते जब जावैं तब मनको तपावैं भारी,
मोक्षे तिने आपता[३]प मोक्षे तिनैं क्षणमें ।
ऐसे मोक्ष[४] प्रतिबंधी विषे लखेमैं संबन्धी,
को कुभागी विनमैं जो रागी होत इनमें ॥ १० ॥

श्लोकः ।

भोगा न भुक्ता वयमेवभुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ॥ कालो न यातो वयमेव

---

१ पुण्योंके नाश होनेसे भोग नाश होतेहै । २ या भोक्ता मर जायगा या भोग स्वय नष्ट होजाँयेगे । ३ जिसको विषय छोडे जातेहै वह पुरुष जलता रहताहै और जो पुरुष विषयोंको स्वय छोड देता है उसके तीनो ताप दूर होजातेहै । ४ ऐसे मोक्षके विरोधी विषयोको मैने अपने सम्बन्धी समझा ।

यातास्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥

पुनः मात्रक सवैया।

अहो सखे मैं भोग न भोगे भोग्योगयो आप मैं मूढ॥
क्रमक्रम हमरो प्राक्रमसगरो लीनो भोगोंभोग अगूढ॥
भुक्ता जान भोगमैं भोगे उलटा भोगों भोग्यो मोहिं॥
शिश्नोदर पर भयो नचीनो कीनो मैं निजापसोंद्रोह॥
इंद्रिय गणके संयम तपको ताप्यो मोहिं नकबहूँठीक॥
काम क्रोध लोभादिअग्निकर मैं संतप्त भयो अबतीक॥
कालचक्रवतभ्रमत सर्वदा शीतउष्णवपु धर विख्यात॥
समा न बीत्योहौं हौंबीत्यो भयो विलक्षण ममसंघात॥
तृष्णा जीरण भई न अबलौं मैंहूं भयो जरजरो आप॥
वृद्धभयो दुर्बुद्धि गई नहिं मे उरमें यहि गुरु संताप॥
अधमकाममोअवधिगईसबलब्धभयोअबलौंकछुनाहिं॥
हहानकरके पां पकरे हर पापकरे मैं अह निशिमाहिं॥

श्लोकः।

आघ्राय पुस्तकं धन्याः सर्वे विद्म इति स्थिताः॥ शतवारं पठित्वापि हा न विद्मो जडा वयम् ॥ २७ ॥

---

१ अर्थात् मेरे शरीरके अवयवोंका समूह वलीपलितादि अनेक विकारोंवाला होनेसे आगेसे बहुत विपरीत होगया है।

पुनः सवैया ।

फूलनिबंध सुगंध रहस्य कुधारतजेसब स्वातमचीनो॥
ते धन याविधिगजतजेभवबंधनवृन्दकियोजिहँक्षीनो ॥
मैं शठ ते शतवार पठेनहिंस्वातमचीनुभयोमदपीनो ॥
हानेरकेतनुमोवशाकेनरकेवसबेकु पराक्रमकीनो ॥ १४॥

श्लोकः ।

ब्रह्मज्ञानविवेकिनोऽमलधियःकुर्वंत्यहो दु-
ष्करं यन्मुंचंत्यपि भोगभांज्यपि धना-
न्येकांततो निःस्पृहाः ॥ संप्राप्तानि पुरा
न संप्रति न च प्राप्तौ दृढप्रत्ययो वांछा-
मात्रपरिग्रहाण्यपि परं त्यक्तुं न शक्ता
वयम् ॥ २८ ॥

पुनः कवित्त ।

ब्रह्मज्ञानके विवेकी विमल मनीषा जाकी
अहो दुहक्रिया ताकी पायो द्रव्य त्यागेहैं ।
भोगनकी राशिको अवास धनते उदास,
जाते भोगोंते निराश आतमानुरागेहैं ॥

१ मनुष्यशरीर धारकर मैने नरकमें वसनेका प्रयत्न किया है ।
२ विचारवाली बुद्धि । ३ घर ।

आदिमें न प्रापत अप्रापत इदानीवित्त;
दृढ न प्रतीति हम आगे कछु पागेहैं ।
इच्छामात्र धनोंके एकत्रको न त्याग सकें;
वही बडभागे हैं हमारे भागे भागेहैं ॥ १८ ॥

श्लोकः ।

भिक्षाशनं तदपि नीरसमेकवारं शय्या
च भूः परिजनो निजदेहमात्रम् ॥
वस्त्रं च जीर्णशतखंडमयी च कंथा हाहा
तथापि विषया न परित्यजंति ॥ २९ ॥

पुनः अनंगशेखर छंद ।

जाचजाचके अहार नाहिं सोपि स्वाद वार,
लाभहोत एकबार भूखतापको अवार ।
शैन भूमिपै बनो न साक सैन को गनो,
शरीर मात्र पोखनो न जोबनो सुपैदवार ॥
क्षीण चीरगोदरी अनेकलीर सोंकरी

---

१ और हम कैसे है कि इससे प्रथम गतआयुमें हमको कभी कहीं कुछ नहीं मिला और अबभी हमारे पास कुछ नहीं है और आगेको कभीसे कुछ मिलनेकी भी उम्मेद नहीं है किन्तु हमारे मनमें धन एकत्र करनेकी इच्छामात्र है परन्तु उस इच्छाका हम त्याग नहीं कर सकते इसीलिये वे विरक्त महात्माही बडे भागोंवाले हैं जिन्होंने प्राप्त धनको छोडकर आत्मज्ञान संपादन किया है और हमारे भाग्य तो हमारेसे भागे हुए अर्थात् नष्टप्रायही प्रतीत होतेहै ।

करी उजार झोंपरी अधेन ग्रंथ वार वार,
हाय हाय भोग चाहि नाहिं मैं तजे अजेपि,
मोर चित्त बैलको सवार बेलकेऽसंवार ॥ १६ ॥

दोहा ।

अलं भरत वैराग्यको, भयो दूसरोऽध्याय ।
निंद्यो भूपति स्वापको, कल्यानारिसुभाय ॥ १७ ॥

दोहा ।

अब तृतीय अध्यायमें, आठश्लोक उच्चार ।
वरणे महिमा कालकी, सुनो जनो उरधार ॥ १ ॥

श्लोकः ।

अमीषां प्राणानां तुलितबिसिनीपत्रप-
यसां कृते किं नास्माभिर्विगलितविवेकै-
र्व्यवसितम् ॥ यदाढ्यानामग्रे द्रविणमद-
निःसंज्ञमनसां कृतं वीतव्रीडैर्निजगुणक-
थापातकमपि ॥ ३० ॥

---

१ हे बैलकी सवारी करनेहारे शंकर ! आप कृपाकर मेरे चित्त-रूपी बैलको सुधारिये । २ राजाने इसमें अपने कल्याणके विरोधी स्वभावकी निन्दा करी है ।

कवित्त ।

इनेप्राणत्राणकाज केकेमैंनकीने काज,
कंजदलपै विराज कंकणी ज्योंहतहै ।
धनमद कर जांके अंधमन आगे तांके;
बके गुणबांके निज तजी लाज मतिहै ॥
होंतो गुणखानि तुम शक्रके समान;
कुरुक्षेत्रग्रसेभानमोमें दान तदवतहै ।
कीनीमें इत्यादि कृति शासन निमित्त पर,
सामनाभी सही पर सास ना रहतहै ॥२ ॥

श्लोकः ।

वयं येभ्यो जाताश्चिरपरिगता एव खलु ते
समं यैः संवृद्धाः स्मृतिविषयतां तेऽपि ग-
मिताः ॥ इदानीमेते स्मः प्रतिदिवसमा-
सन्नपतनाद्गतास्तुल्यावस्थां सिकतिल-
नदीतीरतरुभिः ॥ ३१ ॥

---

१ इन कमलपत्रगत जलबिन्दुकी तरह शीघ्र विनाशी प्राणोंकी रक्षाके लिये मैने कौन २ अकार्य्य नहीं किये है मैने अपनी लाजको त्यागकर धन-मदान्ध पुरुषोंके आगे उनकी तथा अपनी अनेक प्रकारकी प्रशसा करी, मैने यहातकभी कहा कि हे देव ! मै तो गुणोकी खानि हौ और आप इन्द्र जैसे ऐश्वर्य्यवाले महाराज है इसलिये मेरे जैसे पात्रको दान दिये का आपको कुरुक्षेत्रके सूर्यग्रहण जैसा फल है इन प्राणोके लिये मैने इत्यादि अनेक कार्य्य किये शासनाभी सहारी परन्तु शोक है फिरभी मेरे प्राण नही रहते है ।

पुनः कवित्त ।

जाहि मातपिताते मैं भयो उतपत ते तो,
कालवश भये चिरकाल बीत गयो है ।
समवैस वारे द्वारे सिमृति सिधारे सारे,
रहे हम शेष देह वृद्ध वेष लयो है ॥
नदीरेत तीर पर तरुयों शरीर भयो,
प्रति दिन मृत्यु तीर तीर प्रव अयोहै ।
गिले काल व्याल सम मेंडकके अजेहम,
भजें भोग मच्छरोंको मोसों मूढ जयोहे ॥ ३ ॥

श्लोकः ।

तपस्यंतः संतः किमधिनिवसामः सुर-
नदीं गुणोदारान् दारानुत परिचरामः
सविनयम ॥ पिबामः शास्त्रौघान् द्रुतवि-
विधकाव्यामृतरसान् न विद्मः किं कुर्मः
कतिपयनिमेषायुषि जने ॥ ३२ ॥

पुनः त्रिभंगी छंद।

हैं कछुकनिमेषा हमरीवैसालखो न कैसा कामधरों॥
सुरसरिके तट पर कुटि आठकरतोंमैंतपकरतापहरों
गुणजाहिंउदारेअसगणदारेंममरुचिधारेंतिहँविचरों।
गणग्रंथनमोउतकाव्यनमो युतकथारसामृतपानकरों

१ मेरे जैसा और दूसरा मूर्ख कोनहे ?

दोहा ।

तप त्रिय सुधा असिद्ध त्रय; निमिष आयुषा माँहिं ।
दुःखरूप भवते अबे, विनि निगश सुखनाँहिं ॥ ५ ॥

श्लोकः ।

यत्रानेकःक्वचिदपि गृहे तत्र तिष्ठत्यथैको
यत्राप्येकस्तदनु बहवस्तत्रचांते नचैकः ॥
इत्थं चेमौ रजनिदिवसौ दोलयन् द्वा-
विवाक्षौ कालः काल्या सह बहुकलः
क्रीडति प्राणिसारैः ॥ ३३ ॥

पुनः कवित्त ।

काल भगवान वृंदकलावान कलीसंग,
खेलत चौसार चार दिगहूकी धरके ।
चार खाणी प्राणी गोटा रैनदिन पासजोटा,
मारत अचूक चोटा दंपती अडरके ॥
जहाँएक गेह मों अनेक तहाँ एक रहे,
एकते अनेक है क्षणेक एकूँसरके ।
कालकाली खाली कीने लोक लोकपालीसने,
चौपट नहाली अजे शेषलोक करके ॥ ६ ॥

श्लोकः ।

आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जी-

वित्तं व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते॥ दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते पीत्वा मोहमयीं प्रमाद-मदिरामुन्मत्तभूतं जगत्॥ ३४ ॥

पुनः कवित्त।

भानहुँकी गतागत कर दिन दिन प्रति,
प्राण मोरे घटें जैसे खोरे घटे पानिहै।
ग्राम कामो करसारें भवके व्यापार भारें;
ताँमो मत्त मतवारें मृत्युको न ध्यानहै॥
जात जरा पात उतपात[१] पेख भीतजात,
चीतमो न जात जैसे भीतमोन भानहै।
मोहरूप मदिरा प्रमाद कर पानकीनो;
बौराभयो भवगौरा भवको न ज्ञानहै॥ ७॥

श्लोकः।

जीर्णा एव मनोरथाः स्वहृदये यातं जरां यौवनं हंतांगेषु गुणाश्च वंध्यफलतां याता गुणज्ञैर्विना॥ किं युक्तं सहसाभ्युपैति

१ यह प्राणी अनेकोंके जन्म जरा मरणादि उत्पात देखताभी उनको त्झाग देताहै अर्थात् जैसे दीवारमे सूर्यका प्रतिबिम्ब नही पडता ऐसे ही यह जीवभी किसी वार्ताको चित्तमे नहीं लाता।

बलवान् कालः कृतांतोऽक्षमी ह्याज्ञातं
स्मरशासनांघ्रियुगलं मुक्त्वास्ति नान्या
गतिः ॥ ३८ ॥

पुनः मात्रक सवैया।

अहो विचित्र मनोरथ सगरे में उरमें संभव फल हीन ॥
इने न आदि अंत मधचीनों जल तरंग इवउपजत लीन॥
अनुजाग्रत बालादितीनत्रिकमैनहीनकछुसुखपतिक्षीन॥
जराकीनयौवन कोभोजन प्राक्रमहीन भयोमें दीन८॥
बाँझ गुणज्ञोंमोंतनमैगुणअफल भये सबज्योंत्रियबाँझ।
कालक्षमाविनबली कृतांतोउपप्रापति अबहनेंकिसाँझ
सहसायुक्तिमुक्तिहितकोशुभजांकरमनको सँहँसाजाय॥
हरकेपाय कंजयुगहरके अवर श्रेयकोकौनउपाय ॥९॥

श्लोकः।

भ्रातः कष्टमहो महान्स नृपतिः सामन्त-
चक्रं च तत् पार्श्वे तस्य च सापि राजप-
रिषत्ताश्चन्द्रबिम्बाननाः ॥ उद्रिक्तः स च

---

१ अनुजाग्रत् अर्थात् अनुक्षण जाग्रत् मनोग्थ रहते है बालादि तीनोंके
।त्रिकमे अर्थात् बालपनकी जाग्रत् स्वप्न,सुषुप्तिमे तथा युवापनकी जाग्रतादि तीनोंमें
व वृद्धपनकी जाग्रतादि तीनोंमे (नहीन) हीन अर्थात् कम नही होते यदि
होतेहै तो कुछ सुषुप्तिमे क्षीण होतेहैं।२ नाशक। ३ समीप आया।४ शीघ्र।

राजपुत्रनिवहस्ते बन्दिनस्ताः कथाः सर्वं यस्य वशादगात् स्मृतिपदं कालाय तस्मै नमः ॥ ३६ ॥

पुनः कवित्त ।

जाँके वामे दाहने सुमंत चक्र होते अग्र,
राजनकी सभाथी सयंक मुखी नारीया ।
भूपनके पुत्रथे विचित्र वीर अहंकारी,
वृंदबंदी जनहोते वंश के उचारिया ॥
अहो भाई भारी कष्ट सारी भूप भये नष्ट,
सिमृति पदे प्रविष्ट जाँकी कथा भारीया ।
हिंसक प्रपंच सविरंचको असंग पुना,
ताहिकाल बीरको जुहार वार वारिया॥ १० ॥

सोरठा ।

अहो भ्रात अति कष्ट, जासे कालके वशिभये ॥
भये प्राक सभनष्ट, गये सिमृति पथ तिहँ नमो॥ ११ ॥

टीका—अर्द्धभुजंगप्रयात छंद ।

जिसे काल गाले । सुभूपाल माले ॥
जिसे आसपासे । सुमंत्री प्रकाशे ॥ १२ ॥
महावीर स्यॉने । सभी नीति जाँने ॥
पुनर्जाहिं आगे । सभा राज लागे ॥ १३ ॥

चल अग्रजाक । तनें भूप बाँके ॥
युवा द्रव्य माते । सहंकार जाते ॥ १४ ॥
हुते चार नग्रे । सभोगा समग्र ॥
तहां राजधानी । हुती शक्र सानी ॥ १५ ॥
त्रिया इंदुतुंडीं । मनो कामकुंडी ॥
जटी लाल मोती । घनी धामहोती ॥ १६ ॥
चल भाटगाते । चिरंजीव दाते ॥
जिने कोप आगे । सभै भूप भागे ॥ १७ ॥
शिरै छत्र छाजे। दिशा चारभ्राजे ॥
करी है सवारी। करीहयं सवारी ॥ १८ ॥
इने आदि राजे । हुते सासमाजे ॥
सभी कालमारे । गने कौन सारे ॥ १९ ॥
भये ते पुराने । न को ताँहिं जाने ॥
कथाजे पुराने । सुने नाग जानें ॥ २० ॥
पुनःतीनलोकी।सुनी औ विलोकी ॥
निमेषेक माँहीं । गिले काल ताँहीं ॥ २१ ॥
युवा वृद्ध छोरे । कहूँको न छोरे ॥
नमो ताम काले ॥ जिसे सर्व गले ॥ २२ ॥

दोहा ।

हने हनत पुन हनेगो,उत्तम मध्यम मंद ।
गने बरोबर सर्वको, ताँते ताँको वंद॥ २३ ॥

---

१ करी हस्ती । २ घोडे सवारकर । ३ छोकरे ।

श्लोकः ।

प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं
दत्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम् ॥
सम्मानिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किं
कल्पं स्थितंतनुभृतां तनुभिस्ततः किम्॥

पुनः कवित्त ।

जिन धनो कर सभ मिले मनोकाम जब,
ताँको भयो सिद्ध तब कहाँ लाभमान है ।
अरिनके शिरपर चरण को धार कर,
कहाँ भयो डार डर सोयो साभिमानह ॥
जौसनेही जनोंधनों कर मान कीनो घना,
कहां भयो तांहिं भनों तूँतो कुलभानहै ।
कल्प पर्यंत भोग भोगे जंतु कहा होग,
जाँते अंत नाशीलोक सने कारकान है॥ २४ ॥

दोहा ।

भयो काल भय प्रगट कर, तृतिय इति श्री आप।
वैरागादि सुतहिं जने,हने सर्व भय ताप ॥ २५ ॥

दोहा ।

उतकंठा निज चित्त की, कहें चतुर्थोऽध्याय ।
करत विनय नृप शंभु पहि, सात श्लोक बताय॥ १ ॥

१ ब्रह्मा विष्णु आदि कारकों समेत यह लोक अर्थात् ससार विनाशी है ।

श्लोकः ।

एकाकी निःस्पृहः शांतः पाणिपात्रो
दिगंबरः ॥ कदा शंभो भविष्यामि कर्म-
निर्मूलने क्षमः ॥ ३८ ॥

तोटक छंद ।

इकएकनिसस्पृहशांतमना ॥ करपत्रपवित्रदिशावसना ॥
करमा निरमूलनमै निपुना ॥ शिवजूकबह्वैममएमदिना ॥

श्लोकः ।

स्फुरत्स्फारज्योत्स्नाधवलिततले क्वापि
पुलिने सुखासीनाः शांतध्वनिषु रजनीषु
द्युसरितः ॥ भवाभोगोद्विग्नाः शिवशिव-
शिवेत्यार्त्तवचसा कदा स्यामानन्दोद्गत-
बहुलबाष्पप्लुतदृशः ॥ ३९ ॥

पुनः वही कवित्त ।

शांतध्वनी यामिनी की चांदनी अमित दुत्त,
तासों गंगा तीर तलो ऊजलो लसनहै ।
ताँपै सुखी बसृकहूं शिव शिव शिव कहृ,
ऐसी वाणी भनो जैसे प्राणी दुखारतहै ॥
प्रेम उदैपाथ साथ दृगभिग जाहिंकब,

१ अकेला तथा इच्छा रहित ।

आवैं साह साहसे रोमांच पुलकत हैं।
भवके आभोगनते भयो अब उदवेग,
करो ऐसी विधि वेग ऐसी मोरी मतिहै ॥३॥

श्लोकः।

स्नात्वा गांगैः पयोभिः शुचिकुसुमफलै-
रर्चयित्वा विभो त्वां ध्येये ध्यानं निवे-
श्य क्षितिधरकुहरग्रावपर्यंकमूले ॥
आत्मारामः फलाशी गुरुवचनरतस्त्व-
त्प्रसादात्स्मरारे दुःखान्मोक्ष्ये कदाहं
तव चरणतो ध्यानमार्गैकयत्नैः ॥४०॥

पुनः कवित्त।

न्हायके न्हवाऊँ गंगा पाथ साथ नाथ तुम्हे,
शुचि फूल फलों कर रुचि धर ध्यावेंगे।
ध्यान योग ध्यान तेरो तामें लागे मन मेरो,
शैलदरी शिलाके पर्यंक पै सुहावेंगे॥
सुखी निजानंद कर फलाहारी रतितर,
गुरोंके वचनमों चरण थारे भावेंगे।
समरारी थारी कृपा अनुसारे सारे दुख।
सारें हम जदों सों दिहारे कदों आवेंगे॥४॥

---

१ जलावे।

श्लोकः ।

अतिक्रांतः कालो लटभललनाभोगसुभगो भ्रमंतः श्रांताः स्मः सुचिरमिह संसारशरणाः। इदानीं स्वःसिंधोस्तटभुवि समाक्रंदनगिरः सुतारैः फूत्कारैः शिवशिवशिवेति प्रतनुमः ॥ ४१ ॥

पुनः कवित्त ।

सुंदरीके भोगनमें सुंदर ए काल गयो,
भारके भवोट भव्यो जग मग चिरमें ।
पायो अतिखेद गयो थाक निर्वेद अब,
चहों गंगातीर पर वहों उतगिरि में ।
तुंग होहिं तनवार नैन पूरे प्रेमवारी,
कंठदवेनामोचार गंगा जाँके शिरमें ।
भोगनरकागनिके हेतु कौन भजों अब,
करों ऐसी विधि भवों भवमेंनफिरमें ॥८॥

श्लोकः ।

अनावर्ती कालो व्रजति स वृथा तत्र गणितंदशास्तास्ताः सोढा व्यसनशतसंपा-

---

१ विरक्त हुआ चाहताहूँ ।

तविधुराः॥ कियद्वा वक्ष्यामः किमिव बत नात्मन्यपकृतं वयो यावत्तावत्पुनरपि तदेव व्यवसितम् ॥ ४२ ॥

पुनः कवित्त ।

काल ए पुनागमी न सोतोभयो वृथाक्षीन.
तनचीन मनदीन नारी रमणीक में ।
मैकरे कलेशोंके प्रवेशों कर व्याकुलीजा,
सो सो दशा सही सही कहाँ कहाँ तीकमें॥
जो जो करों काम सो सो देतदुखग्राम मोको,
अहो वही अपकाम करों अबतीकमें ।
प्रबल अदृष्ट दुष्ट जोरत अनिष्ट मांहिं,
याँके शाँत विना नाहिं शांति चीनो ठीकमैं ॥६॥

दोहा ।

नष्ट अदृष्ट न ज्ञान विन , ज्ञान न विन वैराग ।
ताँते भवनिर्वेद प्रद, जाँते भवदुख त्याग ॥ ७ ॥

श्लोकः ।

अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा मणौ वा लोष्टे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा ॥ तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यांति दिवसाः क्वचित्पुण्यारण्ये शिव-शिव शिवेति प्रलपतः॥ ४३ ॥

पुनः सवैया ।

पुण्यवने वस कौनेदिनेभनोभोशिवशंभुजटीसमरारी ॥
नागन मोतिनहारनमोउतशत्रुबलीमेंसुमित्रमझारी ॥
माहिंमणीमृणपिंडविषे मधफूलोंकेसाथरपाथरभारी ॥
वात्रिणबीच त्रियाणविपेसबमैसमहैकबदृष्टिहमारी ॥

श्लोकः ।

गंगातीरे हिमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिना योगनिद्रांगतस्य ॥ किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशंकाः कंडूयंते जरठहरिणाः शृंगमंगे मदीये ॥४४ ॥

पुनः कवित्त ।

गंगातीर पर हिमगिरी शिला पर हम,
बांधे पदमासनको मन इंद्रै जीतके ।
ब्रह्मके सुध्यानकी अभ्यास विधिसों निवास,
योगनिद्रा मांहिं कहों ताप चीतके ॥
जरठकुरंग [1]करे शृंगो संग कंडू मोहिं,
सुखसों [2]अभीत मोकों जाने सम भीतिके ।
पारवनीनाथमें अनाथके अभीति वारे,
उत्तमदिहारे कब आवें ऐसी रीतिके ॥ ९ ॥

१ निडर । २ दीवार सदृश ।

दोहा।

निजविपाण कर हरण कब, संघरसहिं ममदेह।
मोहिखबरहे हरनहै, कबहै मन अस देव॥ १०॥

श्लोकः।

कदा वाराणस्याममरतटिनीरोधसि वसन् वसानःकौपीनं शिरसि निदधानोऽञ्जलिपुटम्॥अये गौरीनाथ त्रिपुरहर शंभो त्रिनयन प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान्॥ ४५॥

पुनः कवित्त।

काशीगंगाकेकिनारे भवते किनारेहोके,
कदों वसों वसन कौपीन एकधारके।
दोऊ हाथ जोरकर नायमाथ नमों करों,
मृदु वाणी साथ ररों नाम समरारिके॥
भो प्रभो भवानीवर शंकर त्रिनेत्र हर,
त्रिपुरारी चंद्रधर भवभय हारिके।
क्षणसमदिन सब मोरे बीत जावें जब;
ऐसे अहआवै कब कह्योकृपाधारके॥ ११॥

श्लोकः।

वितीर्णे सर्वस्वे तरुणकरुणापूर्णहृदयाः

स्मरंतः संसारे विगुणपरिणामावधि-
गतीः॥वयं पुण्यारण्ये परिणतशरच्चन्द्र-
किरणैस्त्रियामा नेष्यामो हरचरणचित्तै-
कशरणाः ॥ ४६ ॥

पुनः शंकर छंद ।

कबदेहुमें अरथीन सर्वम जोर कर कर दोय॥
कब तरुण करुणा साथ अंतःकरण पूरण होय ॥
दुर्कामको परिणाम योनी तिर्यगादि अपार ॥
तिहँदुःखसीमा पिखडरों निजमंद कर्म निहार ॥
जिस पुण्यवनमहिंशरदहिमकरकिरणपरिणितचारु
बनतामसे सखासमें निर्वेदसहित विचार ॥
मम चित्तको हर चरणकी तर शरणहोय सराग ॥
जब इमवितावों विमल रैना तबी में बडभाग ॥
दोहा—तज स्वतंत्रभवभोग कब, लखौंनिजातम आप।
देहविषे संदेहविन,विचरों तब निहपाप ॥ १४ ॥

श्लोकः ।

क्षांतं न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न सं-
तोषतः सोढा दुःसहशीतवाततपनाःक्लेशा-
न्न तप्तं तपः ॥ ध्यातं वित्तमहर्निशं निय-

मितप्राणैर्न शंभोः पदं तत्तत्कर्म कृतं
यदेव मुनिभिस्तैस्तैः फलैर्वंचितः ॥४७॥

पुनः दोहा ।

सुनों कर्म जो जो करे, सोसो हमहू कीन।
तिनकर्मोंके फलों कर, हमठागे मतिहीन ॥ १५ ॥
मुनिन लह्यो सुखरूप फल, मोहिं दुःख फल लीन ।
करे कर्म समविषम फल, इउँमैंठाग्योदीन ॥ १६ ॥
तज गृहोचित सुख मुनिन, करसंतोष विवेक ।
अहं विदेश कलेश कर, त्यागे भोग अनेक ॥१७॥
ऋषिन क्षमाकर खलोंके, सोढे दुर्वचनादि ।
मैंभी सहे कुवाकपर, कर याचन सेवादि ॥ १८ ॥
शीत वात आपत दुसह, पुना कलेश अपार ।
मुनिन सहे तप धार कर, हमों सहे सह नारि ॥ १९॥
हर पद पद्म युगल मुनो; ध्यायो मनकृत वाच ।
प्राणो करदिन रातिमें, ध्यायो धनको साच॥२०॥
क्षमा तृप्ति युत दुर्वचन, सहों तजों गृह भोग ।
सरुचि ध्याउँहरपाउँमैं, तब तासम फलहोग ॥२१॥
ऐसे शंकरवंत दिन, हे हर शंकर शंभु ।
होंहि कबी सम मुनिनके, मैं विचरों तज दंभ॥२२॥

---

१ कल्याण करनेवाले ।

अथवा—दोहा ।

स्वरग अखय सुख लाभ हित, करे मखादि सराग ।
करे याग ऋषिवाक गहि,पुनामुनिन ममठाग॥२३॥
ताँ क्रतुके फलको जबै, परामर्श मैं कीन ।
जनत पीनभय ममहृदय होयपुण्यजब क्षीन ॥२४।
गिरतनाक गिरिते अधे, पुरुष पषाण तुरंत ।
सहित कष्टते कष्ट तर, अनुभव करत सुजंतु॥२५॥
जन्म मरण दृढ करणको, अतिदृढ करण सुभोग ।
ताहित मैं क्रतु करे भव, को मोसम खल होग॥२६॥
भोगबडाई कर मुनो, मोहि लुभायोचित्त ।
कर्मगर्त्त महिं डार मम,हन्यो मुक्ति सुखवित्त२७॥

सोरठा ।

कर संतोष विवेक, तजे न गृहके उचित सुख ॥
त्यागे भोग अनेक,भ्रमण विदेश कलेश कर ॥२८

दोहा ।

अहो क्षमा कर खलोंके, सहे न दुर्वचनादि ।
सोंढे मोहिं कुवाक पर, कर याचन सेवादि॥२९॥
शीत वात आतप दुसह, पुनःकलेश कदंब ।
मैं न सहे तप धार कर, सोढे बीच कुटुंब ॥३०॥

---

१ यज्ञ । २ विचार ।

ध्यायो धनको अहर्निशि, मन कृत वचन सनेम ।
ईश्वरके पदपद्म को, ध्यायो त्यों न सप्रेम ॥ ३१ ॥
ए गुरु पश्चात्ताप उर, भयो न आतम वित्त ।
विन विचार मैं मुग्ध को;लियो विख्यों भव जित्त
दृष्ट अदृष्ट सनेह युत,उरकागर[1] पर वरण ।
भोग राग मय सोनलय,अंकविचार अवरण॥३३

सोरठा ।

प्रभु अनाथके नाथ, मैं अनाथके माथ पर ।
कृपादृष्टिके साथ,शिवानाथ निज हाथ धर॥३४॥
विन वैराग्य विवेक मैं,तवपदपंकज टेक ।
श्रीशंकर मम शंकरो, दे वैराग्य विवेक ॥ ३५ ॥

श्लोकः ।

धन्यानां गिरिकंदरे निवसतां ज्योतिः परंध्यायतामानन्दाश्रुकणान् पिबंति शकुना निःशंकमंकेशयाः ॥ अस्माकं तु मनोरथोपरचितप्रासादवापीतट-

---

१ दृष्ट अदृष्ट रूप स्नेह अर्थात् तेलसे चिकना हुआ तथा भोग रूपी रंगसे रंगीत हुआ (उर) चित्तात्मक कागज विचार रूप निर्मल अक्षरों अर्थात् अक्षरोको ग्रहण नहीं कर सकता.

क्रीडाकाननकेलिकौतुकजुषामायुः परं क्षीयते ॥ ४८ ॥

पुनः चौपाई ।

भवमेवहीपुरुषबडभागी। इतउतभोगचाहिजिहँत्यागी॥
करनिवासगिरिकंदरमाँहीं । परमप्रकाशरूपहरध्याहीं ॥
तिसेध्यानकेआनँदकरके।तिनहिंद्दगनतेउदकजुसरके ॥
बैसनिशंकअंककेमाँही।अचवहिंविहँगसरितजलताँही॥
धन्यजनोंकीउमराऐसे। परीहोत क्षय भाषी जैसे ॥
हममतिमंदअधन्यकुभागी।भुक्तमुक्तिबिबतेबैरागी ॥
केवलव्यर्थमनोरथसंगा।ममशुभअवधभवतपरिभंगा ॥
वापीबागतडागकिनारे।सुंदरमंदिरहोंहिंहमारे ॥ ३९ ॥
शुभगभामिनीसहतिहँअन्तर।करहिंसुक्रीडाकेलिनिरंतर
असमनराजकौतुकहिंध्यावत ।असीआयुपापरेबितावत
किंचित संचितभोगमझारी।परीहोतक्षयवयसहमारी ॥
तिनासमानसुदिवसहमारे।कबआवहिंगेहेसमरारे ४१ ॥

दोहा ।

निज भव हित भवत्याग हित,भो भव मैं तव ध्याउँ।
शेष आयु निज कबवयं,सुखसों तथा विहाउँ॥४२॥
भरत शतक वैराग्यकोऽध्याय चतुर्थो बस्स।
करीशुभेच्छा भरत नृप,ताविन जीवन भस्स॥४३॥

---

१ हे महादेव । २ अपने कल्याणके लिये ।

दोहा ।

अबपंचम अध्यायमे, सात श्लोक अनूप ।
विधि को देत उलाहनें, बहुविधि भरथरि भूप॥ १ ॥

श्लोकः ।

प्रियसखि विपद्दंडव्रातप्रपातपरंपरापरिच-
यचले चिंताचक्रे निधाय विधिः खलः ॥
मृदमिव बलात्पिंडीकृत्य प्रगल्भकुलाल-
वद्भ्रमयति मनो नोजानीमः किमत्र
विधास्यति ॥ ४९ ॥

कवित्त ।

मो मन को अज खल मृदपिंड सम खलु,
करके इकत्र चिंताचक्र परधरेहै ।
दुःखमाँझ दुःखहोर लाभसांझभोर दंड,
जोरकर जोरकर फेरे चल करेहै ॥
अत्र मित्र वल्लभ प्रगलभ कुलालवत,
कौनेविधि करे विधि वैतो घरे घरे है ।
अहो मैंन जानो भोरा दैवमोते मुख मेरा ।
चिंता चिता विषे मोरा चित्त नित्य जरेहै ॥ २ ॥

श्लोकः ।

अभिमतमहामानग्रंथिप्रभेदपटीयसीगु-

स्तरगुणग्रामांभोजस्फुटोज्ज्वलचंद्रिका॥
विपुलविलसल्लज्जावल्लीवितानकुठारिकाज-
ठरपिठरीदुष्पूरेयं करोतिविडंबनम् ॥५०॥

पुनः कवित्त।

कुलको जो मान सो महान दृढ़ग्रंथि आहि,
ताहिके प्रभेदनकै माँहि स्यानी भारी है।
गुण गुण कवी वारी कोखिरानवारी शुभ्र,
सोम उजियारी लाज लताको कुहारीहै॥
मोक्षभोगसुख आरी दीनता कलेशक्यारी,
धीरजके दीपको समान व्यारी हारीहै।
ऐसी पेटकी पिटारी लाई क्रूर मुखचारी,
पूर पूर सबहारी ठागी विश्व सारीहै॥ ३॥

श्लोकः।

हिंसाशून्यमयत्नलभ्यमशनं धात्रा म-
रुत्कल्पितं व्यालानां पशवस्तृणांकुर-
भुजः सृष्टाः स्थलीशायिनः॥ संसारार्ण-
वलंघनक्षमधियां वृत्तिः कृता सा नृणां
यामन्वेषयतां प्रयांति सततं सर्वे
समाप्तिं गुणाः॥ ५१॥

कवित्त ।

नागोंको अहार ब्यार मारुतो कीनो मुख चार,
उद्यमनहिंमा वार सुखलाभ होयहै ।
अंकुर तृणादि स्वादु सुधासों प्रसाद पाय;
पशुवृंद अहलाद धार धरा सोयहै ॥
रचीनरोंकी कुवृत्ति सिद्धजो न विना वित्त,
धनसिद्धता अचित्त गुण नित्य खोयहै ।
जनोंसोंविरोध विधि कर कहा कीनों सिद्ध;
रंडीपूत समताहिं दंडी नाहिं कोय है ॥ ४ ॥

सोरठा ।

भवनिधि तरण मँझार, बली नरन की तरुण धी ।
विधिना ताँहिं अधार, कत उलटी विधिना कियो॥

श्लोकः ।

आधिव्याधिशतैर्वयस्यतितरामारोग्य-
मुन्मूल्यते लक्ष्मीर्यत्र पतत्रिवच्च विवृत-
द्वारा इव व्यापदः ॥ जातं जातमवश्य-
माशु विवशं मृत्युः करोत्यात्मसात्तत्कि-
न्नाम निरंकुशेन विधिना यन्निर्मितं
सुस्थितम् ॥ ५२ ॥

पुनः कवित्त ।

आधिव्याधि वृंदरोग ताँहींकेसंयोगकर,
आयुमैं अरोगको वियोग भयो अतिहै ।
पुनारमा जहां वसे तातें खगवत नसे,
खुलेद्वारे वत धसे विपता महतहै ॥
जो जो निरभयो भयो पर वशिताहीं काल,
ततकाल निज वशि अवश करत है ।
अजेजो अकुंडे कीनों काँकी शुभ थिति चीनों,
वेदलोकमतसों न सुखीनको सत है ॥ ६ ॥

श्लोकः ।

क्वचिद्वीणानादः क्वचिदपि च हाहेति रुदितं क्वचिद्विद्वद्गोष्ठी क्वचिदपि सुरामत्तकलहः ॥ क्वचिद्रम्यारामा क्वचिदपि जराजर्जरतनुर्न जाने संसारः किममृतमयः किं विषमयः ॥ ५३ ॥

पुनः कवित्त ।

बांसुरी की ध्वनी कहूँ हाहा इति रोना कहूं,
श्रेष्ठन की गोष्ठी कहूं दुष्टता हरतिहै ।

---

१ निरकुश ब्रह्माने जो जो कुछ बनाया है उनमें हम कौन वस्तुकी शुभ स्थिति देखें हमारे को तो वेदशास्त्रसे तथा स्वानुभवसे यही प्रतीत होताहै कि, न कोई सुखी जीव है और न कोई ब्रह्माका बनाया पदार्थ सत्यही है ।

कहूँ अंध धी सुराची महाकटुवाची कहूँ,
रामाअभिरामा रमा मनहरै अतिहै ॥
कहूँ दुष्ट कुष्ट संग गरे अंग कष्टसहैं,
सदा जलपत रहैं जैसे जलपति है ।
रचना निरंकुशविरंचिकी न जानें हम,
सुधारूप है कि विषरूप ए जगत है ॥ ७ ॥

श्लोकः ।

ये संतोषसुखप्रमोदमुदितास्तेषां न भिन्ना मुदो ये त्वन्ये धनलुब्धसंकुलधियस्तेषां न तृष्णा हता ॥ इत्थं कस्य कृते कृतं च विधिना तादृक् पदं संपदां स्वात्मन्येव समस्तहेममहिमा मेरुर्न मे रोचते ॥ ५४ ॥

पुनः कवित्त ।

रुचित सुमेरु मोन आवैकाहू काम जोन,
निजगौरतामै सोना सदा गलतान है ।
जीव जे संतोष कर त्रिपत सदीव तर,
ताँको शेष न आनंद रह्यो अछुआन है ॥
पुना जेई आन जन धन लोभकर मन,

१ अर्थात् समुद्रकी तरह गुडगडाते रहते है ।

व्याकुल हैं जाँके ताँकी तृषना न हान है ।
कौनके निमित्त ऐसी संपदा अमित्त रची,
इति विधि करके न विधि बुद्धिमान है ॥ ८ ॥

श्लोकः ।

सृजति तावदशेषगुणाकरं पुरुषरत्नमलंकरणं भुवः ॥ तदनु तत्क्षणभंगि करोति चेदहह कष्टमपंडितता विधेः ॥ ५९ ॥

पुनः कवित्त ।

पुरुष रतन गुण गणको सदन पुन,
पौरुषको आयतन परमप्रवीना है ।
सारी धरा को शृंगार जडाजडको शिदार,
मोक्ष भोग को भँडार चारु लख लीना है॥
चतुरवदन को चतुर हम चीनो तब,
प्रथमजो ऐसे नरको तपत कीना है ।
ताके पाछे ततक्षण नष्टकरें हाहाकष्ट,
इतविधि विंधिना को पण्डित न चीनाहै ॥ ९ ॥

दोहा ।

भरतशतकवैरागको,ऽध्यायपंचमोअंत ।
दोषअरोपविरंचिको, हरिदयालुवरणंत ॥१०॥

दोहा ।

षष्ठे श्रेष्ठ जननकी,वरणन करें प्रशंस ।
शुभश्लोक सत्राँतिसे, हृदय कमलको हंस ॥ १॥

श्लोकः ।

रम्यं हर्म्यतलं न किं वसतये श्राव्यं न गेयादिकं किं वा प्राणसमासमागमसुखं नैवाधिकं प्रीतये ॥ किंतूद्भ्रांतपतत्पतंगपवनव्यालोलदीपांकुरच्छायाचंचलमाकलय्य सकलं संतो वनांतं गताः ॥ ५६ ॥

छप्पय ।

गयेसंत बन माँहिं नाहिंको जंतु जाँहिं माह ।
वसन हेतु क्याधाम तलोअभिरामहुतो नहिं ।
श्रवणयोग्यगीतादि कहाँथो ताँ वियोग दुख।
कै न अधिक रुचि हेतु प्राणसम मित्र संग सुख ।
तेहुतेसर्वपर तिहँ तजै दीपशिखावत तरल पिख ।
यतभ्रमतो पतत पतंग के पंखपवनकरचपल शिख२

श्लोकः ।

ब्रह्माण्डमण्डलीमात्रं किं लोभाय मनस्विनः ॥ शफरीस्फुरितेनाब्धेः क्षुब्धता जातु जायते॥५७॥

पुनः वही सवैया ।

यहिमंडलमात्रप्रपंच सबी ततवेतनको[1] कतकारण-
छोभा । जिम सागरमें मछरीमछरीउछरेमछरीकछु-
होतसुलोभा ॥तिमनेकलुभायकसेनतिसेक्षणक्षीणल-
खीतिनलोककीशोभा ।शुकतीज्ञभ्रमातनरूपोमृषा-
ततवेतनकोनतथातिहँक्षोभा ॥ ३ ॥

श्लोकः ।

सखे धन्याः केचित्त्रुटितभवबन्धव्यति-
करा वनांते चित्तान्तर्विषमविषयाशीवि-
षगताः ॥ शरच्चंद्रज्योत्स्नाधवलगगना-
भोगसुभगां नयंते ये रात्रिं सुकृतचयचि-
त्तकशरणाः ॥ ५८ ॥

पुनःसवैया ।

नित पुण्य परायण जाँचित केवलताँभयबंध हन्यो
गनहै । मन पंनग क्रमँझार अहं विषमूल सनेजुति

---

१ सूर्य या चंद्रको रोधक परिवार । २ जैसे मछलीके चित्तमें दूसरी छोटी मछली पकड़नेका लोभ होताहै तो वह उछलती है परन्तु सागरको क्षुब्ध नहीं करसकती । ३ वैसेही मछलियोंकी तरह परस्पर एक दूसरेके विघातक संसारके पदार्थ तत्त्ववेत्तारूप समुद्रको नेकभी (लुभाय) क्षुब्ध नही करसकते क्योंकि (क्षण क्षीण लखी) इत्यादि ।४ जैसे शुक्तिके सच्चे ज्ञानवाले पुरुषको उसमें मिथ्या रूप्य की प्रतीति भ्रमावती नही वैसेही स्वाधिष्ठानमें मिथ्या प्रतीयमान संसारभी तत्त्ववेत्ताको क्षोभकारक नहीं है ।

नेहनहै॥वरशारद चंद्रकी चाँदनीसों यहिव्योमतलो उजलो वनहै।बसजो बनमै असंगैन बितावत जोबनमैं जनसो धनहै ॥ ४ ॥

श्लोकः ।

मही रम्या शय्या विपुलमुपधानं भुजलतावितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोऽयमनिलः ॥ स्फुरद्दीपश्चंद्रो विरतिवनितासंगमुदितः सुखं शांतः शेते मुनिरतनुभूतिर्नृप इव ॥ ५९ ॥

पुनःसवैया ।

शुचिचारु घनी क्षिति सेजबनी मृदु है भुजवेलविशालसिरानो। सियरोगतिमंदसुगंधवहेयहिबातअहैव्यजनोखवितानो ॥ विधुदीपलसे तपतादिग्रसेशुधबुद्धिवधूमिलमोदमहानो । मुनिशांतस्वरूप अनूपविभूति सोंभूपतिकेसमसोवतमानो ॥ ५ ॥

श्लोकः ।

चाण्डालः किमयं द्विजातिरथ वा शूद्रोऽथ किं तापसः किं वा तत्त्वनिवेशपेशलमतिर्योगीश्वरः कोऽपि किम् ॥ इत्युत्पन्नविकल्पजल्पमुखरैः संभाष्यमाणा जनैर्न

१ आकाशका चदोआ ।

क्रुद्धाः पथि नैव तुष्टमनसो यान्ति स्वयं योगिनः ॥ ६० ॥

पुनः कवित्त ।

कहाँ एचंडाल जात मगमो द्विजाति किधों,
कैधौं कोऊ शूद्रहै कि चोर वा तपेशहै ।
तत्त्वके प्रवेशमें प्रबीन मति मान उत,
उत्तम योगेश को न चीने कौन वेषहै ॥
इतिविधि कर जो संभाषमाण जननके,
सुखोंकर संभव विकलप अशेषहै ।
सुनें गुनें मुनि ताँहिं वरशापदेतनांहिं,
जाँहि सुखी पंथ मांहिं जैसे नक्षत्रेश[1]है ॥ ६ ॥

श्लोकः ।

प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणे संयमः सत्यवाक्यं काले शक्त्या प्रदानं युवतिजनकथामूकभावः परेषाम् ॥ तृष्णास्रोतोविभङ्गो गुरुषु च विनयः सर्वभूतानुकम्पा सामान्यः सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिः श्रेयसामेष पंथा ॥ ६१ ॥

---

१ नक्षत्रेश अर्थात् चन्द्रकी तरह अथवा क्षत्रेश सर्व क्षत्रिय राजाओंके महाराजभी जैसे सुखपूर्वक नहीं चलसक्ते ।

पुनः कबित्त ।

हिंसा नाहिं करे परद्रव्यको न हरे सत्य,
वचन उचारे पुण्य समें पुण्य करहै ।
यथावित्त कथा परनारों की न भनें सुने,
ताँते गुंगबोला बने भोला सम चरहै ॥
तृष्णाको प्रवाह भंग गुरों विषे नम्र अंग,
मित्रभाव सबसंग करे हर हरहै ।
गायो सब ग्रंथनमें संत ऐसे पंथनमें,
रागद्वेष मोखचरे[1] जैसे दिनकरहै ॥ ७ ॥

श्लोकः ।

पाणिः पात्रं पवित्रं भ्रमणपरिगतं भैक्ष्यमक्षय्यमन्नं विस्तीर्णं वस्त्रमाशादशकमपमलं तल्पमस्वल्पमुर्वी ॥ येषां निःसंगतांगीकरणपरिणतिः स्वात्मसंतोषिणस्ते धन्याः संन्यस्तदैन्यव्यतिकरनिकराः कर्म निर्मूलयंति ॥ ६२ ॥

पुनः कवित्त ।

पाणिपात्रपै पवित्र भिक्षाअन्न अक्षैचित्र,
द्वारे द्वारे भ्रमे मिले गिले निरदोपहै, ।

---

१ अर्थात् जैसे सूर्यका गमनागमन किसीके राग द्वेष पूर्वक नहीं है साधु पुरुषको भी वसेही होना चाहिये ।

दशों दिशा चैल विसतीरण अमैल पुन,
तलप अनंता[1] की अनंत सुख घोषहै ॥
करमाको मूल मूलाविद्या[2] निरमूल जाकी,
दीनता निवारी सारी स्वातम संतोष है।
भेदाभेद भ्रम भागो ब्रह्मवित वीतरागो,
मानअपमान ते न उदे मोद रोषहै ॥ ८ ॥

श्लोकः।

कौपीनं शतखंडजर्जरतरं कंथा पुन-
स्तादृशी निश्चिंतं सुखसाध्यभैक्ष्यमशनं
शय्या श्मशाने वने ॥ मित्रामित्रसमा-
नतातिविमला चिन्ताथ शून्यालये ध्व-
स्ताशेषमदप्रमादमुदितो योगी सुखं
तिष्ठति ॥ ६३ ॥

पुनः गीया मालतीछंद।

शत खंड क्षीण कुपीनजाकी तास समजिहैं गोदरी।
सुखसाध्य भिक्षाहार शय्या वन मशाने गिरिदरी[3] ॥
पिखशत्रुमित्र समान सुखद्युति शून्यसदनो मै सदा॥
निर्मलनिजातमको भजेंसुस्वरूपते जनसर्वदा ॥ ९ ॥

---

१ अनन्ता अर्थात् भूमिकी शय्या यावत् सुखोंका घरहै। संसारमात्रके आदि कारणका नाम मूलविद्या है। ३ पर्वतकी कदरा।

दोहा ।

चरहिं स्वतंत्र निरंकुशे, सप्रमोद मदनष्ट ॥
अधिष्ठानसुप्रबोधकर, कल्पित नष्टसमष्ट ॥ १० ॥

श्लोकः ।

आसंसारं त्रिभुवनमिदं चिन्वतां तात
तादृग् नैवास्माकं नयनपदवीं श्रोत्रव-
र्त्मागतो वा ॥ योऽयं धत्ते विषयकरिणी-
गाढरूढाभिमानः क्षीबस्यांतःकरणक-
रिणः संयमालानलीलाम् ॥ ६४ ॥

पुनः ललितछंद ।

तीन भवन मय सर्वसरग को आशमंतमें ढूँढ्यो ताता ।
कहूँ न देखासुना कहूं नहिं ऐसोजनजोजन्योविधाता
जनको अंतःकरणकरीसम विषयरूपकारिणीमिलराता
संयम संगल तिहँ पग में जिहँडारयोलीलाकरभोभ्राता

दोहा ।

सुषुपति वत जाग्रत विषे; तेज त्रिधा जिहँ भोग ॥
ऐसो इंद्रियजीत जन,को इक सुस्थितहोग ॥ १२ ॥

श्लोकः ।

शय्या शैलशिला गृहं गिरिगुहा वस्त्रं

१कायेन वाचा मनसा अथवा सात्त्विक राजस तामस, किंवा अनिच्छ परेच्छ स्वेच्छ इत्यादि ।

तरूणां त्वचः सारंगाः सुहृदो ननु क्षिति-
रुहां वृत्तिः फलैः कोमलैः ॥ येषां नैर्झर-
मंबुपानमुचितं रत्येव विद्यांगना मन्ये ते
परमेश्वराः शिरसि यैर्बद्धो न सेवां-
जलिः ॥ ६५ ॥

नील छंद ।

शैलशिला सिहजा गिरिकंदर मंदिरहैं ।
वृक्षनके छिलके पट वा दिग अंबरहैं ॥
मित्र कुरंग समूह सही तिन संगचरे ॥
कोमल पुण्य फलीन फलोंकर प्राणधरे ॥ १३॥
शीतल स्वेच्छित स्वच्छ सुगंधित मिष्ट घना ॥
उच्चित अंबु गिरिंदनको अचते जु जना ।
ब्रह्मविचारवती सुमती युवती कु सदा ॥
धार रिदे महि मोदलहैं न तजें सुकदा ॥ १४॥
जो निज प्राणन त्राण कि कारण पाणि बिबे ॥
जोर नमों शिरसों न करे कहुँ अग्रकबे ।
जो इति रीति पुमान विराजत लोक विखे ॥
मानततौं परमेश्वरमै सुनजीव सखे ॥ १५ ॥

---

१ कोमल तथा पुण्यरूप पवित्र हैं फल जिनके ऐसें वृक्षोंके फलों कर ।
२ अपने दोनो हाथोको ।

श्लोकः ।

क्वचिद्भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्य्यङ्क-
शयनं क्वचिच्छाकाहारः क्वचिदपि च
शाल्योदनरुचिः॥ क्वचित्कंथाधारी क्वचि-
दपि च दिव्यांबरधरो मनस्वी कार्यार्थी
न गणयति दुःखं न च सुखम् ॥ ६६ ॥

पुनः कवित्त ।

कबी भूमि आसन सिंहासनपैबास कबा,
कबी भिस ग्रास कबी व्यंजन अहारहैं ।
कबी शतखंडवती गोदरी को ओढे जनी,
कंबर को कबहूँ दिगम्बर को धारहै ॥
कबीभानु कर तपे कबी शीश छत्र दिपे,
कहूँ सत्कार होत कहूँ त्रिसकारहै ॥
तदपि न संत जन सुखी दुखी होत मन,
आतमा असंग लखे देहको विहारहै ॥ १६ ॥

दोहा ।

क्रिया स्वप्न प्रतिबिंबते, बिंबप्रबुद्ध अंग ॥
तथा त्रिधा कृतकालत्रय, जीवनमुक्त असंग॥ १७॥

---

१ अर्थात् जैसे स्वप्नगत लाभ भय आया क्रिदि प्रबुद्ध पुरुषको हानिकारक नहींहै तथा जैसे प्रतिबिम्ब गत अनेक प्रकारके वर्ण- बिम्बमें स्पर्श नही करसकते एव त्रिधाकृत अर्थात् शुक्ल कृष्ण अशुक्ला कृष्णभेदसे तीनप्रकारके कर्म अथवा भूत भविष्यत् वर्तमान क्रिया किम्बा कायिक वाचिक मानसिक क्रियासे जीवनन्मुक्त पुरुष तीनों कालमें असंग है ।

श्लोकः ।

भिक्षाशी जनमध्यसंगरहितः स्वायत्त-
चेष्टः सदा दानादानविरक्तमार्गनिरतः
कश्चित्तपस्वी स्थितः ॥ रथ्याक्षीणवि-
शीर्णजीर्णवसनैः संप्राप्तकन्थासखो नि-
र्मानो निरहंकृतिः शमसुखाभोगैकबद्ध-
स्पृहः॥ ६७॥

पुनः कवित्त ।

जाँच जाँच अन्न खातो आन देनलेन घातो,
नीच जन संग हातो स्वते आतो जातो है ।
विचरे अलग मगमाहिं नाहिं जग माहिं;
काहूँसों विरोध नातो बोधसिंधु नातोहै ॥
गली गली माहिं बीन गली गली टली लीन;
ताको कंथा सीता पीन खीन सीता वातोहै॥
अहंकृति वृत्ति गतो नाँहि निरमान गातो;
जाँको मनमीन ब्रह्मानंद सिंधु मातोहै ॥ १८ ॥

दोहा ।

चितसों मिल चितसो भयो, जिहँ चित तज निजबान ।
असजीवन मुकते पुरुष, नहिं मुक्ते जगजान ॥ १९ ॥

श्लोकः ।

आशानामनदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी ॥ मोहावर्त्तसुदुस्तराऽतिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः॥६८॥

पुनः कवित्त ।

आशा नाम सरी मनोरथ नीर भरी करी,
तृषणा तरंगो खरी व्याकुली गभीर है।
धीरज को तरु हारी बुद्धि नावको निवारी,
भव सिंधु[1] गति वारी विपता समीर[2] है ॥
मदनादि खग[3] भीर रागद्वेष ग्राहगीर,
मोहचक्र याँको नीर जारे वाको सीर है।
ऊँचे चिंता तटी जाँते तरनी कठिन ताँते,
भोगी ताँमैं वहे योगी वहें पार तीर है ॥ २० ॥

---

१ इस आशारूप नदीकी संसार समुद्रमे गति है ।

२ विपत्तिरूपी समीर (वायु) बुद्धिरूपी नौका को चलने नहीं देता ।

३ कामादि पक्षीगणकी इसके किनारे भीड है तथा रागद्वेषादि अनेक ग्राह (नक्र) इसमे जीवोको पकडनेवाले है तथा मोहरूप (चक्र) घुमन घेरोंवाला इसका जल है ऐसा (बांका) टेढा [illegible] कि मानो स्पर्श करने मात्रसे जलाता प्रतीत होताहै ।

सोरठा ।

मुख स्वरूप ते साधु, निकल गए तिहँ सरतमो ।
आशा नदी अगाध, निकल लए जन इतरगण ॥२१॥

श्लोकः ।

न भिक्षा दुष्प्रापा पथि पथि मठारामस-
रितः फलैः संपूर्णा भूर्विटपिमृगचर्मापि
वसनम्॥सुखे वा दुःखे वा मदृशपरिपाकः
खलु तदा त्रिनेत्रं कस्त्यक्त्वा धनलवम-
दांधं प्रणमति ॥ ६९ ॥

पुनः नराच छंद ।

पथे पथे न भीख कष्ट साथ हाथपै परे ।
मठ मसान बाग कि युगांत आग सों जरे ॥
समूह भूमिपैफली फलें कहाँ नदें फलें ।
मृगानके मृगान किं न शीत वात को दलें ॥२२॥
इसोसमाज आजलौ विराजमान हैं सभी ।
इनेहुते त्रिनेत्र को महानधी तजे कबी ॥
पुना कबे भजे धनं कणी मदांध जन्तुको ।
वसै इने वने भजे निजातमा अनंतको॥२३॥
समान पाप पुण्यके विपाक दुःख सुःखको।
लखे चरे बने नराग द्वेष यों विदुःख को ॥

इसे पुमान लोकमैं अशोक कोइके कहूं ।
विलोक है अने को जु ब्रह्म रूप एकहू ॥ २४ ॥

श्लोकः ।

महादेवो देवः सरिदपि च सैवामरसरित्
गुहा एवागारं वसनमपि ता एव हरितः ॥
सुहृद्वा कालोऽयं व्रतमिदमदैन्यव्रतमिदं
कियद्वा वक्ष्यामो वटविटप एवास्तु दयिता ॥ ७० ॥

पुनः कवित्त ।

देव एक महादेव नदीदेव नदीसेव,
गिरि गुहा धाम एव चीर दिशा चारहै ।
एह काल मित्र नीको व्रतनिरदीनताको,
संगबुद्धि युवती को प्रिया बटडार है ॥
सुतानिरवैरता कुमार ब्रह्मको विचार,
और कहा भनों याको बन्यो या आचारहै ।
ऐसे सदाचार परवार कर जोऊ नर,
सदापरवारचो सदा ताहिको जुहार है ॥ २५ ॥

श्लोकः ।

भिक्षाहारमदैन्यमप्रतिहतं भीतिच्छिदं
सर्वदा दुर्मात्सर्यमदाभिमानमथनं दुःखौ-
घविध्वंसनम् ॥ सर्वत्रान्वहमप्रयत्नसुलभं

साधुप्रियं पावनं शंभोः सत्रमवार्यमक्षय-
निधिं शंसंति योगीश्वराः ॥ ७१ ॥

पुनः कवित्त ।

भिक्षाहरच्यो अन्न गुणगणोंके संपंन अक्षै,
निधि अयतन लाभदीनता अभावहै ।
दुर मतसर त्रास मद अभिमान आश,
हने दुःख राशि सने जने शांति भावहै ॥
नाँहि प्रति हत है सकल काल सतहै,
अखिल देश गतहै महेश यज्ञ गावहै ।
हिंसा बाध निरोपाध भनत प्रशंसा साधु,
मुख्यमोक्ष साधन मों साधन को भावहै ॥ २६ ॥

दोहा ।

शम दमादिके पुष्टिहिन, गर्वहतार्थ सप्रीत ।
गहे सिद्ध परमार्थ हित, भिक्षा अन्न अतीत ॥ २७ ॥

श्लोकः ।

पाणिं पात्रयतां निसर्गशुचिना भैक्ष्येण
संतुष्यतां यत्र क्वापि निषीदतां बहुतृणं
विश्वं मुहुःपश्यताम् ॥ अत्यागेऽपि तनोरखं-
डपरमानंदावबोधस्पृहां मर्त्यः कोऽपि शिव-
प्रसादसुलभां संपत्स्यते योगिनाम् ॥ ७२ ॥

पुनः कवित्त ।

परेपाणिपात्रपै स्वभावक पवित्रभिक्षा,
ताँसोंमाण रक्ष्याकरैं जहाँचहे वहेहै
बार बार विश्वको निहारतृण भारवत,
करेत्रिसकार सदा चारमाहिं रहे है ॥
तनुके अत्याग लग शुभमग लगरहे,
दहेजीवभावको स्वभाव ब्रह्म गहे है ।
ऐसी दैवी संपदा न लहे देवदया विन,
ईशकृपाते अनीश[१] निज रूप लहेहै ॥२८ ॥

श्लोकः ।

स्थितिः पुण्यारण्ये सह परिचयो हंत
हरिणैः फलैर्मेध्या वृत्तिः प्रतिनदि च
तल्पानि दृषदः ॥ इतीयं सामग्री भवति
हरभक्तिं स्पृहयतां वनं वा गेहं वा सदृश-
मुपशांतैकमनसाम् ॥ ७३ ॥

पुनः कवित्त ।

शुचिबनोंके निवासी मृगोंसंगहांसीखेल,
मेलदासदासीको न मेध फल आशीहैं ।
कदीप्राति नदी तट कदी शामशाने मठ,

१ यह अल्पज्ञजीव ।

कबहूँ पखान बटतरुतरे वासीहैं ॥
केवल प्रसन्न मन तुल्यआयतन वन,
तदपि एकांत घन वासी सुक राशीहैं ।
ईशके उपासी की प्रकाशी या विभूति ताँहिं,
गावें सुनें ध्यावें नाँहिं पावें यमपाशीहैं ॥२९॥

दोहा

भरत शतकवैरागको, इति षष्ठो अध्याय ।
सुजनोंके गुणगण भने, हरीद्याल शिर नाय॥३०॥

दोहा ।

सतें तीन भूपानसों, भयो पृथक संवाद ।
तिनें शलोक भने तिनें, हनें मोह गर्वाद ॥ १ ॥

सोरठा ।

विनरुचि कहूँ नरेंद्र; दीन भरत प्रति भोग कछु ।
तत अलीन नाथेंद्र, तीन हेतु कर चीन अप ॥ २ ॥
राज अंश समरक्त, भोग योग न विरक्तको ।
दान रक्तविन भक्ति, तव मम सम पद हेतु त्रय॥३॥

श्लोकः ।

त्वं राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभि
मानोन्नताः ख्यातस्त्वं विभवैर्यशांसि
कवयो दिक्षु प्रतन्वंति नः ॥ इत्थं मानद

नाति दूरमुभयोरप्यावयोरंतरं यद्यस्मा-
सु पराङ्मुखोऽसि वयमप्येकांततो
निःस्पृहाः ॥ ७४ ॥

दोहा।

त्वं राजा राजा अहं, अधिक भेद कछु नाहिं।
तुमुं चतुर्विध चमू कर, करो गर्व मनमाहिं ॥ ४ ॥
मन बुधि चित्त अहं चतुर, सेना प्रबल प्रवीन।
लब्ध गुरों की सेवकर, हमउन्नत इतपीन ॥ ५ ॥
बहुप्रकारकेधनो कर, तुम प्रसिद्ध जग माहिं।
हम निजनिर्मल गुणों कर,प्रगटदशोंदिशि आहि ६
बीच पुस्तकों कविजनों, गाये हमरे गीत।
भो भूपति संसारमें, मैं प्रसिद्ध इति रीत ॥ ७ ॥
भूके कोटि बिभाग कर, कण लवांश तिहुँ पाये।
तांकर त्वं उन्नत भयो, रुचि विहीन दर्शाय ॥ ८ ॥
बोधनिजातम राजकर; हम गर्वत उरमाहि।
नाहि करें हम चाहि तव, हे मानद नरनाह ॥ ९ ॥
ईश्वर अंश अतिथि लख, मानहान अघहोग।
हमकर तुम इत त्रितयविध, मानदानके योग॥१०॥

सोरठा।

याचकादिकर भूप, मानदानके योग्य तुम।
त्यों हमते तव ऊप,होत न समता भावत ॥ ११ ॥

दोहा ।

किंचित तव मम सामता, बाह्यगुणों कर चीन ।
राजांतरमों अंतरों, हम अदीन तुम दीन॥ १२ ॥
यथालाभ संतुष्ट हम, निजानंदमों लीन ।
इतउतके सुखसों अहित, याविधि अहं अदीन ॥१३॥

सोरठा ।

मदन मदादि क्लेश, शोक लोक परलोकके ।
तांकर दुखी हमेश, त्वं नरेश हैं दीन इम ॥ १४ ॥
जगजीवन दिन चार, तज मद स्वेच्छित संचरो ।
सभजन हरि अवतार, करो मित्रता सर्व सह ॥ १५॥

दोहा ।

गहे पाद योगीशके, नमो दंड इव कीन ।
आयसु पाय स्वदेश नृप, गयो मुदित मदहीन॥ १६॥
बचन नाथके धार उर, डार गर्व संताप ।
भूप अभय विचरत भयो, वृथा न साधुमिलाप॥ १७॥
अमृत वचनकी वृष्टिकर, कृपा दृष्टिके साथ ।
गर्व ताप नरनाथको, हरयो नाथको नाथ॥ ४८ ॥

पुनःदोहा ।

श्रीहरि भगत यतीन्द्रपति; अमुक नरेन्द्रोवाच ।
चिंतामणि समराज तज, कत दरिद्र मों रांच॥ १९॥

सम मुदिता निर्दीनता, निर्भय सहित विचार ।
कीर्तिकरनदरिद्रकी, ताप्रति भगन उदार ॥ २० ॥

श्लोकः ।

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं च लक्ष्म्या सममिह परितोषो निर्विशेषो विशेषः॥स तु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः॥७५॥

चौपाई ।

वल्कलकरहुलासहै हमको।बहुलक्ष्मीकरमोदसुतुमको ॥ मैं प्रसन्न सक्तूशागादहिं। त्वं प्रसीदबहुबिंजनस्वादहिं ॥ वयंहर्षक्षितिशिलाशयनकर । यूयं तुष्टदुग्ददरखटपर ॥ शांति त्रिया युत ममसंतोषा ।सुंदरनारिनकरतवपोषा॥ नृपनितृप्तितायोजनग्रामहिं।किंचितनारतम्यनहिंतामहिं पुनः दरिद्री भवतु वहीनर । हृदय जासमुप्रकाश आशतर ॥ भूपति चित्त प्रतुष्टे जबहीं । को धनवंत रंक को तबहीं ॥ मो मन अब संतुष्ट भयोअति। नाहिं दरिद्री धनी निहारति॥ भेदभाव सगरो अब नाश्यो। एकब्रह्मउरमाहिं प्रकाश्यो ॥ परमानंद ब्रह्म मैं जोरा । परमानंदभयोमनमोरा ॥ २९ ॥ ब्रह्माकार भयो मन

१ तुमको सतोष है हाथादांतके पायेके पलगपर सोकर ।

जाते । ब्रह्माकार लखे भव ताँते॥तुम जु कह्यो नृपमो-
हिंदरिद्री॥कवनयुक्तिइनमेंतुमअद्री ॥ देखदिगंबरकाय
विवर्णा॥मोहिं दरिद्री तोहिं जु वर्णा॥देकर तोतेअधि-
कसमाजा । लियोदरिद्रमोलमेंराजा ॥ जासप्रतापनि-
जातमशोधा । भयेनिरस्तसमस्तविरोधा॥ जास मया
कर हे नर राई । मैं अब सिद्ध अवस्था पाई ॥ अवि-
लोको मैं लोकसवाया । मोहिनहेरतकोक्षितराया ॥
द्विधा प्रकार दरिद्र बखाना।एकसतोमयतममयआना॥
मनकरतनकरभोगअसंग्रह । यहिवरिष्टदारिद्रमोरगृह॥
हरिगुरुभक्तिकृपादित्यागजहँ।सोकनिष्ठदारिद्रतोरमहँ॥
चाहिआहिमनमाहिंजाहिंअति।सोपिदारद्रीतुमवतनरपति
तुच्छ सदुःखविनाशीसंपत।पायवृथानृप त्वंकत गर्वत॥

दोहा ।

मौन धरो निजभौन को, करो गौन भूपाल ॥
तृष्णाचित्त विशाल जिहँ, वही परमकंगाल ॥३२॥
ज्योंरवि मास निशांतमें, शांति अवश उत्पन्न ॥
त्यों नृप उर धर भरतरव, भयो ज्ञान संपन्न॥३३॥

---

१ जैसे सूर्य्य समग्र राशिको भोगके मासकी अंतिम रात्रिके शेषमे शान्त होजाता है अर्थात् उस राशिके भोगसे उपराम होजाता है अथवा जैसे पूर्णमासीकी रात्रिके शेषमें चद्र प्रभावसे सूर्य शान्तसा उत्पन्न होता है वैसेही राजाभी भर्तृहरिके वचनोंके प्रसादसे शान्त होगया।

अति वर्षा जल भरतरव, नृप उर ऊषर गाय ।।
ताँ युत तिहँ वितजलजभव, गयो नमो कर राय॥३४॥

पुनः दोहा ।

मम आयन पावन करो, पावन पावन पाय।
वक्ता नृप वतराजनिज, निर्भय ताँ प्रतिगाय ॥ ३५

श्लोकः ।

अर्थानामीशिषे त्वं वयमपि च गिरामी-
श्महे यावदित्थं शूरस्त्वं वाग्मिमदर्पज्वर-
शमनविधावक्षयं पाटवं नः ॥ सेवंते त्वां
धनांधा मतिमलहतये मामपि श्रोतु-
कामाः मय्यप्यास्था न चेत्तत्त्वयि मम
सुतरामेष राजन् गतोऽस्मि ॥ ७६ ॥

कवित्त ।

विभवोंके ईश तुम वागमिके ईश हम,
भूपति भगवान शूरवीर हम अति हैं।
परप्राणी माहिं मद ताप तास नाशबेको,
अक्षे गिरा चल चतुराईको धरति हैं ॥

---

१ पृथिवी । २ ताँयुत अर्थात् ऊषर युत होनेसे भी तिह भरथ रवसे वित्त अर्थात् उत्पन्न होनेसे राजाकी हृदय भूमिमे ज्ञानरूप जलज अर्थात् कमल, भव कहिये उत्पन्न हुआ तो नमो करके गया ।

सेवतधनांधे तोकों पूजतहैं श्रोते मोकों,
मतिमलहत हेत लेत मोते मति हैं ।
रावरो हमारो राजगुणोंके समाज सम,
अंतरके राज मांहिं अंतरो महति है ॥ ३६ ॥

टीका चौपाई ।

राजन तुम पृथिवी पति राजे।हम राजे त्रिभुवनके साजे
लाजें तुमरेधाम विराजें। देख दोषबहुताते भाजें॥३७॥
बुद्धि वेलिक हरणे हारी । अंश तुमारी कठिन कुठारी॥
छर्दमैल मूत्रादित्यागसम।तजेपदारथनाहिं ग्रहैंहम
हमनिपग्रेहीचरहिंस्वतंतर । दुसह दुःखममसुख परतंतर
में आनंदीनिजानंदकर।विषय भोगसुखके तुमकिंकर॥
करो दंडतुमदुष्ट जनोंको। सहिन सकोंमेंदुःख सोतांको॥
तुमडाटोतिंहँमुक्तचहेहम। तवममसंगित तुल्यतेजतम ॥
महत राजवारेहमराजन ।स्वलपराज तवसोममकाजन॥
तुमरे सदनसदौरेप पौरे।सहिन सकों में बायक कौरे ॥
तवनिकेतइत्यादिकदूषण। सोममयोग्य नभोभूभूषण ॥
नमोमात्रजो भूपतिहारी ।हमताँकेभीनहिं अधिकारी॥
तव आलय तनपाले लाजें॥जांते हम तुम दोनों राजें॥
ताते हमरा तुमरे माहीं । हे नृप अधिक अंतरोनाहीं॥
राजान्तरमोंआहिविषमता।बाह्यराजगुणकीकछुसमता ॥

---

१ वमन । २ सहित द्वारपोंलोंके तुम्हारे पौर कीहैय दरवाजेहैं ।

असुरी संपत्केपतितुमहू। सुरी संपदाके प्रभु हमहूँ ॥
तुमस्वदेशके अर्थोंकेपति। रंकधनीकोकरोविषमगति ॥
हमवाणीपतिनिजवाणीकर।करंहितारतमतुमसमनरवर ४५
निजप्रजा[1]रिके अरितुमवीरा। बलविख्यातराबरोवीरा॥
निजविभागकेहरणेकाजा।रक्षकतुमलोकनकेराजा ॥४६॥
बाहिर धनके हरता तस्कर।ताके दण्डकतुम भूपतिवर॥
अरुतवमनदुषमनतव अंतर।तुमरेबलको हरत निरंतर॥४७॥
ब्रह्म सच्चिदानंदरूपतव । ढापलियोतिहँयथाअभ्ररवि ॥
मृषाअचेतनदुःखरूपतन।अरुपरिणामीविपताबासन ॥४८॥
तामेअहंभावतवकीनो । नखशिखाग्रलोनिजवपुचीनो॥
अज असंगलो धर्म तुम्हारे।चित्तशत्रुते ढापेसारे ॥४९॥
जन्म मरणलोतनके कर्मा।चीने तुमअपने पर धर्मा ॥
निजानंद ते तुमकोतोरे। नीच विषयसुखबोचसुजोरे॥५०॥
कामक्रोधलोभादिरूपधरि। नटवतमोहेतुमकोमनअरि
तुमरेसुखकोअहिनिशिकाटे । सतपथतेतुमकोमितडाटे।५१॥
कीनदीनतेदीनेतुमहिंमन। जन्मजन्मकोमनतवदुषमन॥
तबआश्रयबलपायतिहारो। हन्योसर्वमनतेजतुमारो॥
तुम्हरे बलको जब मनधारे । तबशुभाशुभपंथ पधारे॥
तवबलरितेकितेनसिधारे।जडस्वभावतेबाणप्रकारे।५२॥

---

१ अपनी प्रजाके शत्रु।

जबलगि तुमरोमनअरिजीता[1]तबलगलवसुखहोतनमीता
जबतुमचित्तशत्रुनिजजीता। तवमोसमतुमचरोअभीता॥
मनरिपुजीता[2]सबरिपुजीते। मनरिपुजीता[3]सबरिपुजीते॥
इतरतनोंमेहोइननिग्रह। मानसकोविनमानसविग्रह[4]।५५।
ताते स्वांतरमनवशिकीजे। निर्भयपदशूरनकोलीजे॥
मदनमदादिशत्रुभक्ताके। हरहिंमोक्षसुखअरिहमताँके५६।
वायकसायककरतेहंहनके। समदमादिजनकेमनजनके॥
त्रिधातापतेताकोराखहिं।तेनिजज्ञानपायभैनाखहिं।५७।
भूपपुनासमसूरशूरहम। गिराकिरणकरहरहिंजुभ्रमतम॥
रागद्वेषकोमदज्वरभारी।ताकरजग्तसर्वतनधारी॥५८॥
ममवचनौषधिकोजनजबहीं। संयमसंयुतसेवहिंकबहीं॥
हेतुसमेतप्रहारतापसब।लहिंतनिरंतशयानिजानंदतब५९
अरतृष्णाकरबौरेजेनर। गहेमानविनधनकणकाखर॥
तनपोषतयोषितभोगार्थ।तेनलखहिंपशुवतपरमार्थ।६०।
असपामरतवसेवतराजन। सेवहिंमोहिंमोक्षकेभाजन॥
निजमतिकीमलहवकेकाजा।सुनतेवचनसरुचिममराजा६१।
अरसहकामीभोगनिमित्ता।अरचहिंमोहजबेइकचित्ता।
प्रगटेजौतिहँपुण्यविशेषा।तेपितजाहिंनिजानिखिलकलेशा
सुखपसुखेन शीघ्र बहुभोगा। करेगिराममताँजनयोगा

---

१ जीवित। २ जीवित। ३ जीतागया। ४ शरीर। ५ ह्वारदेतेहैं।

चपलचित्तमहिवचनवसाहिमम। करहिंतिसेतबअचलअचलसम
अचलनिजातमसुखभुक्तावत। भुक्ताचित्तअचलतापावत।
ब्रह्माकारभयोमनजाँते। भोग्यो गयो आपखलुताँते॥
पूरबचपलरूपनिजखोयो। चितसोंमिलचिताचितसोहोये।
चितचितनाम सजातीजाँते। भवतअभेदउभयचितताँते
अचलनिजातमसुखकीदानी। ताँते अचलचतुरममबानी
जहाँ संचरेगिराहमारी। करेतिसेतबनिज अनुसारी६६
ताँते वाक्य हमारे राजन। जन श्रद्धालूके अति साजन।
ममवचनोंपर तव श्रद्धाजब। धरोतबैउरतापहरोसब॥
सर्व जनोंकेहितकीकीजे। निर्भय दान सकल को दीजे॥
यशकोतिलकधारजगजीजे। मानसदेहसफलकरलीजे॥

दोहा।

हरहु दुखीकेदुःखको, सुखिये को सुखदेह।
धरे शिरोमणिवचन मम, रमो नगे मणि गेह६९॥
मान हान भूपानको, कीन सप्तमेंऽध्याय।
अनुज वृद्धभ्रातानके, धरयो मध्यमोऽध्याय॥७०॥

दोहा

अष्ट अष्ट श्लोक कर, नृपन गर्व संताप।
अमृतवचनचूरणसहित, चूरण करहिं कलाप॥ १॥

---

१ पर्वतके समान। २ स्थिरता। ३ अनुज अर्थात् सबसे छोटा केवल तीन श्लोकमात्र सातवा अध्याय अपने बडे २ भाइयोंके मध्यमे विराजमान हुआ

श्लोकः ।

विमलहृदयैर्धन्यैः कैश्चिज्जगज्जनितं पुरा
विधृतमपरैर्दत्तं चान्यैर्विजित्य तृणं
यथा ॥ इह हि भुवनान्यन्येधीराश्चतुर्दश
भुंजते कतिपयपुरस्वाम्ये पुंसां क एष
मदज्वरः ॥ ७७ ॥

चौपाई ।

कछुकपुरनकोहोकरराजा।यांमदज्वरनरकरतअकाजा ॥
विमलचित्तजनकेचितधंने । पूर्वसुजगत जिनहुंनेजंने ॥
कमलासनतेआदिमहावर । गर्वकरहिंबनहैनकन्योपर ॥
जगत अनंतअनंत फणोंपै।धन्यो अनंत न गर्व कन्योपै॥
परशुरामतेआदिप्रवीनो। जिनभवकोत्रिणवततजदीनो।
इंद्रादिकपुनअपरजुधीधर।यांजनलोकविखेअतिशयवर।
चौदशभुवनराजकिलभुंजत । स्वपनेहूंमदज्वरनहिंरंजत
मंगभाग्यजे आदिरंकनर । तेजडनवधनसुरापानकर॥
बंध मुक्ति विधि लखे न अंधे । कनकबधूकेसुखमें बंधे
अविनयवानपरमअभिमानी।व्याकुलइंद्रियबुद्धिविहानी
किंचितसंपतपायदुष्टजन ।करहिंगर्वअतितुच्छकृपणमन
खानपानगृहवसननकेहितः। चहोंखलोंतेमैंन कदाचित॥
भिसवरकेभोजनकरहमअलं।अचनअर्थअलंमधुरगंगजल

१ तृप्त । २ पर्य्याप्त ।

शयनहेतममवसवसुधातल । चीरदिगंबरवल्कलकरअलै
कछुपुरपतिअरनवधनपाए । अधिपतिधनपतिजेगवाए
ताँते याचनको दुख जोऊ । मैं न सहारसकों अब सोऊ

दोहा ।

मुक्ति भुक्त संयुक्त हर, भजोंपरणफल खाय ।
पर न दुर्जनोंकेघरन, देहि शब्द कहुँ जाय ॥ १० ॥

श्लोकः ।

स्वादिष्ठं मधुनो घृतादिरसवत् या प्रस्र-
वत्यक्षरं देवी वागमृतात्मनो रसवत-
स्तेनैव तृप्ता वयम्॥कुक्षौ यावदमी भवंति
धृतये भिक्षाहृताः सक्तवः तावद्दास्यकृ-
तार्जनैर्न हि धनैर्भोगान्समीहामहे ॥ ७८ ॥

पुनःचौपाई ।

फलफूलादिशाकसतवावर । यहिजोल्यावेंहमभिक्षाकर ॥
अचवों तिहँ सुरसरिजलपीके। शांतकरोंजठरागनिनीके
ताप चित्तको हरेजापहर । लहोंनिजातमसाधुसंगकर ॥
सुधास्वरूप ब्रह्म वितवेदी । चिद्‌जड़ ग्रंथिसमूलप्रभेदी
वाणी जाहिं भवानीकेसम । स्रवति सुधांकअहंब्रह्मासम
सर्वगिराते उत्तम वानी । जाँके गहे सर्व दुख हानी ॥
मधुतेक्षीरखांड घृतरसज्यों । स्वादुवंतअतिसंतशब्दत्यों

१ आनन्द ।

गिरातिनहुँकीश्रवणमननकर । तृप्तभवतममचित्त निरंतर
जबलगइममममसतगुणवरतन।तबलगधनाहितभजोंनभूपन
भ्रुकुटीनैनबैन मुखउरकर । भ्रमत सर्वदाद्रव्य गर्व कर ॥
शिश्नोदर पर धर्म विहीनें। पथ परमार्थ परार्थ न चीनें
ताँ पदातिहै ताँते वित्ता। करो न संग्रह भोग निमित्ता॥
ताँहिंपामरोंतेजनपामर। चाहितद्रवणहिं सहित अनादर।
मणीफणीकेशिरकीजैसे।जो जाचे सोबाचे कैसे ॥१७॥
विषयभोगकेहितवांछिवित । धनकेहेतधनाढहिं बांछत ॥
ताँते विषय मोह में छोरा।धनधनाढ्यसोंकाम न मोरा

दोहा ।

तन रक्षा भिक्षा करे, गुरुशिक्षा उरपोष ।
भोग भूप धनमोक्ष रिपु, मोक्षकरे हितमोक्ष ॥१९॥

श्लोकः ।

दुराराध्यः स्वामी तुरगचलचित्ताः
क्षितिभुजो वयं च स्थूलेच्छा महति
च पदे बद्धमनसः॥जरा देहंमृत्युर्हरति
सकलं ·जीवितमिदं सखे नान्यच्छ्रेयो
जगति विदुषोऽन्यत्र तपसः ॥ ७९ ॥

पुनः कवित्त ।

तजे दुराराध्यस्वामी कृपण कुमग गामी,
वाजिवत चलचित्त भूपनके भानिये ।

तातें मे सथूल चाहिपुरी होति नाहिं तातें,
लायोमनताहिं माहिंपद जो महानिये ॥
जराहरे कायहरे कालसमुदाय प्राण;
तातें तप करो सखे विदुषों बखानिये ।
तप विना आन मग श्रेयको न मध्ध्यजग,
तप नाम चित्तकी एकाग्रताको जानिये ॥ २० ॥

श्लोकः ।

पुरा विद्वत्तासीदुपशमवतां क्लेशहतये गता कालेनासौ विषयसुखसिद्ध्यै विषयिणाम् ॥ इदानीं संप्रेक्ष्य क्षितितलभुजः शास्त्रविमुखान् अहो कष्टं सापि प्रतिदिनमधोऽधः प्रविशति ॥८० ॥

पुनःसवैया ।

श्रुतिबोधविरोधनिवारणकारणभाकहुवासुसखासजनाँको।
कछुकालगयेरसिआनदयेसुखभोगाकिलाभनिमित्तधनाँको।
अतिखेदसुविद्याअविद्याभईअबमोक्षनभोगजनैंपुरुषाँको ॥
प्रतिवासरजात अधेति अधेखलवेदबिरुद्धबिलोकनृपाँको।

पुनः टीका-चौपाई ।

पुरामातवतथी विद्वत्ता । पुरुषोंके कल्याण निमित्ता॥
सुजनोपढेमुक्तिहितबेदा।तिनहु जन्योतिन उरनिर्वेदा ॥

स्वारथसिद्धारथवैरागहिं। जन्योंविवेकसखातिहँजागहिं
युगलमखेमिलहयोंयुगमभ्रम।ज्योंरविदृगतमहरत विनाश्रम
शास्त्रज्ञानइमबंधनहर्ता । पूर्वसुभयो मुक्तिको कर्ता ॥
किंचितकालवितीतभयोजब।वहीबोधजनमुग्धनकोतब॥
विषयसुखहुँकेसिद्धिनिमित्ता।होतभयोक्रमकरततवित्ता॥
तिनोंजनोंजबतन्त्रअधीते । करतभयेनृपश्रवणसप्रीते ॥
गुरगोविप्रनिदरसनमाहीं । त्रिधाअनन्यभक्तिउरजाहीं ॥
धर्मीसतबादीमनदाया । शुभगुणमंदिरअसनरराया ॥
ताँतेआमनायसुणसादर । देतद्रव्यबहुज्योंजलबादर ॥
इमभोगनकोकारणहोई । अहोखेद अबविद्या सोई ॥
दिनदिनअधेअधेकोधावे।मुक्तिभुक्तिनहिंउभयउपावे ॥
यामेअवरनकारणकोऊ।क्षितितलभुक्ता नृप गणहोऊ॥
कृपणअभक्तमुग्धअतिपापी।दुर्मगगामीमृषाअलापी ॥
शास्त्रोंमाहिंनाहिरतिराई । अगुणअयशनिधिअसनरराई
सोअबविद्यादेखतिनोंको । नाहिभुक्तभीदेतजनोंको ॥
श्रवणकरतनहिंपठतनआपहिं।कबहूँकहूँपुण्यपरतापहिं।३०।
किंचितकथासमागमबनहै।सुनत अरुचिनहितामेमनहै॥
चित्तभ्रमतभवअर्थनमाहीं।कथाअर्थकछुबूझतनाहीं ३१
अरश्रद्धाविनजबकछुदर्वेहिं।देहिंताहिकोतबअतिगर्वेहिं।
वक्ताकोअनुचरवतजाने।तातेकरतनअतिसनमाने ।३२।

अखक्ताकीइच्छाजोहै । तातेतृप्त कदापि न होहै ॥
तातेजोबुधिमानअहेजन।भूपनभवनेगवनकरेजिन । ३३।

दोहा ।

निर्दूषण भूषण महा, रूखन सेवहि सोय ।
तबे तनय विद्या जने, भुक्त मुक्त शुभदोय ॥ ३४ ॥

सोरठा ।

विद्या वधूप्रसूत, शांतिधुनी भूमेऽभवत ॥
जने प्रबोधसुपूत, हने कलेश अशेष तब ॥ ३५ ॥

श्लोकः ।

अभुक्तायां यस्यां क्षणमपि न यातं नृपशतैर्भुवस्तस्या लाभे क इह बहुमानः क्षितिभुजाम् ॥ तदंशस्याप्यंशे तदवयवलेशेऽपि पतयो विषादे कर्त्तव्ये विदधति जडाः प्रत्युत मुदम् ॥ ८१ ॥

पुनः दोहा ।

भयोगर्व बहु नृपनको, वरणों किं सम सोय ॥
केवल वृथा निमित्तबिन, जडता सूचक होय ॥ ३६॥
भई अभुक्त न निमषअपि, भूप गयो कर गाय ॥
चगल सगल भूपानकी, ताहि पाय गर्वाय ॥ ३७॥
तास अंश पुन अंशतिहँ, तौं अवयव लव लेश ॥

तिहँ उच्छिष्टके पति भये, गर्वहि हम दुहनेश ॥ ३८ ॥
गनका समक्षितबहुपती, पुनः सर्वकी जूठ ॥
ताहि भोग कर भूपसठ, मुदिता धरें अनूठ ॥ ३९ ॥
परम निंद यहि कर्म करें, पश्चात्ताप करे न ॥
उलटे मदमुदिता धरे, धिक पुरुषाधम ते न ॥ ४० ॥
पुन धिक धिक तिन नरनको, तिने घरन जे भाग ॥
नमोकरन तन भरण हित, शरण विश्वंभर त्याग॥४१॥

श्लोकः ।

गंगातरंगकणशीकरशीतलानि विद्या-
धराध्युषितचारुशिलातलानि ॥ स्थाना-
नि किं हिमवतः प्रलयं गतानि यत्साव-
मानपरपिंडरता मनुष्याः ॥ ८२ ॥

पुनः सवैया ।

शुचिगंगतरंगकीबूँदकणीकरशीतलचारुहिमांचलकीशिल॥
जिहफूलफलादिउपानधरेशिवकोनितसेवतदेवधधूमिल ॥
परभोजनमेंनिजजोजनदेदिलतागिरिकीकतकाललयोगिल।
अपमानसहीअपमानसहीविदधीरसहीनृपधाममहीबिल

१ अपमानसे अर्थात् नीच पुरुषही अपमानको सहारताहै और बिद अथार्त् बिद्वान धीर पुरुषको राजालोगों के घर सर्पा की बिला जैसे दीखतेहै ।

श्लोकः ।

फलं स्वेच्छालभ्यं प्रतिवनमखेदं क्षिति-
रुहां पयः स्थाने स्थाने शिशिरमधुरं
पुण्यसरिताम् ॥ मृदुस्पर्शा शय्या सुललि-
तलता पल्लवमयी सहंते संतापं तदपि
धनिनां द्वारि कृपणाः ॥ ८३ ॥

पुनः सवैया ।

प्रतिकाननवृच्छनतेमनवांछितलाभसुखेनफलादिअपारा ॥
सरिताकिसथानसथानविखशुचिसीतलमिष्टमिलेबहुवारा ।
जलपत्रवतीमृदुसापरशीतलपादिकेहोवतभूपनद्वारा ॥
सटकेमतिमानमहाभटकेमतिमानतहांकतहोवतख्वारा ॥

श्लोकः ।

किं कंदाः कंदरेभ्यः प्रलयमुपगता
निर्झरा वा गिरिभ्यः प्रध्वस्ता वा तरुभ्यः
सरसफलभृतो वल्कलिन्यश्च शाखाः ॥
वीक्ष्यंते यन्मुखानि प्रसभमपगतप्रश्र-

---

१ जलवत् शीतल कोमल तथा निर्मल पत्रोवाली मृदु कोमल स्पर्शवाली तल्प अर्थात् शय्यादिके होतेभी राजाओं के द्वार पर (सटके) अर्थात् डारके अपने मति और मानको महा भटकताहै वह मूर्ख पुरुष जिसको अपनी मति में मा अर्थात् ममत्व नहीं है परन्तु बुद्धिमान् वहा हैरान कैसे होसकताहै अर्थात् तू कभी नहीं ।

याणां खलानां दुःखोपात्तालपवित्तस्मय-
पवनवशान्नर्त्तितभ्रूलतानि ॥ ८४ ॥

कवित्त ।

कंदराते कंद मूल कहा निरमूल भयो;
वारी वारे नग किधौं देतहै न वनको ।
मीठे फलों वारी डारी तरोंकी न फल देहिं;
कैधों द्रुम देत हैं न बलकल जनको ॥
दुःखसों मनाक धन साध्यके मदांध भये,
मद्ब्यार साथ जो भ्रमावे भ्रूलतनको ।
खलोंके कुमुखोंको सबल सो पुरुष पेखे,
अहो कैसे तजे ऐसे बन चिंतामणिको ॥ ४४ ॥

श्लोकः ।

मृत्पिंडो जलरेखया वलयितः सर्वोऽप्ययं
नन्वणुस्तं स्वीकृत्य सदैव संयुगशतै-
राज्ञां गणा भुंजते ॥ ते दद्युर्ददतेऽथवा
न किमपि क्षुद्रा दरिद्रा भृशं धिग्धिक्तान्
पुरुषाधमान्धनकणं वांछंति तेभ्योऽ-
पि ये ॥८५ ॥

दोहा ।

वल्यो जलधि जलरेख कर, यहिक्षिति मृतिकापिंड ॥

१ जल ।

भोगत ताको भूपगण, कर बहु समर प्रचंड ॥ ४५ ॥
खड खंड कर अग्निके, पिंडशरणके संग ॥
खंड खंड कर धरणि सब, भोगत भूप उमंग॥ ४६ ॥
द्रव्य गर्वकर अंध मन, कृपण दरिद्री क्षुद्र ।
कुटिल कुमग गामी अधम,कामीदुःख समुद्र ॥४७॥
तजके मति निजमानको, जेमतिमान पुमान ।
धनकाकनकावाँछते,ताँते धिक धिकतान॥ ४८ ॥
सूमधनी धनकी कनी, देहिंकिधों नहिं देहिं ।
बुद्धिमानकीबुद्धिको, मानसहित हरि लेहिं॥ ४९ ॥
दाम मात्र न ददामि धन,करहिं निंद अपमान ।
पुरुष प्रतिष्ठा मानको, जीवन मृत्यु समान ॥ ५० ॥
हरके घरके भोगको,त्रिपतहिं नृपन निकेतु ।
भोग प्रेत कर इमग्रसे,शशी राहु रविकेतु ॥ ५१ ॥
संचित अर्थ अनर्थकरि, भोगतसाधु जु तास ।
लेतपाप सभआपतिहँ, देत पुण्यनिज राशि ॥ ५२ ॥
भूपन सम भूपानके,भोगत भोग जु साधु ।
सो तदवत दुर्गति गहे, शमदमादि कर बाध ॥ ५३ ॥
इत निंदा उत मंद गति, तास भ्रष्ट बिब लोक ।
ज्वरवतको घृतवतहते,शुभको नृपको ओक ॥ ५४ ॥

सोरठा ।

दुग्ध साधु मनमांहि, राज अंश कांजी मिले ।
युगुल शीघ्र फटजांहि, गहे मुमोक्षू नाहिं तिहँ ॥५५ ॥

दोहा ।

दुहे साधुधीधेनु का, दुग्ध सुकृत समूह ।
अर्प भोग घासादि तिहिं भूपगोप विधिऊह॥ ५६ ॥
बहुभोगों कर पुष्ट तन, तन पुष्ट मनपुष्ट ।
मनपुष्टेमद मदन लौं; पुष्ट होत रिपु दुष्ट ॥ ५७ ॥
जन विरक्तको भूप जन, बहुत भुगावे भोग ॥
नातर साधु असाधुहै, पाप भूपको होग ॥ ५८ ॥
मलिन अन्न कर मलिन मन, शुद्ध अन्न कर शुद्धि ।
जलवतचित जासों मिलै, भवत तथा विधिबुद्धि ।५९।
वर धनाढ्य सत भाव कर, यजे संतको जोय ।
गंगोदकके पान सम, तृषा कुगति हत दोय॥६०॥

सोरठा ।

तात यथाधिकार, यजे साधुको भूप वर ॥
नातर तिने धिकार, देत लेत जु विचार विन॥ ६१ ॥
नृप धन धनुते धीर, शरके सम सरके झटति ॥
पोखेंचित्त शरीर, हरिभज भिक्षा अन्न कर ॥ ६२ ॥

दोहा ।

भयो भरत वैराग्यको; अलं अष्टमोऽध्याय ।
धर्म विमुख भूपानको, निंद्यो तास मिलाय ॥ ६३ ॥

दोहा ।

नवमें रवि वृत कर कहें, दशा प्राक विदमान ।
सिमर सिमर गतदिननको, हसत समाधि उथान ॥१॥

श्लोकः ।

ये वर्धन्ते धनपतिपुरः प्रार्थनादुःख-
भाजो ये चाज्ञत्वं दधति विषयाक्षेपपर्य-
स्तबुद्धेः ॥ तेषामंतः स्फुरितहसितं वास-
राणां स्मरेयं ध्यानच्छेदे शिखरिकुहर-
ग्रावशय्यानिषण्णः ॥ ८६ ॥

पुनः कवित्त ।

गुफाके पखानपै समाधिते उत्थान पाय,
ब्रह्मध्यान सुखको मै ध्यानकीनों अहिसे ।
बीतेजे दिहारे दुखवारे ताँसमारहँसो,
दुष्टधनी द्वारे जे भ्रमान वारे अहिसे ॥
दुःख जडताके हेतु याचना निकेत जे थे
भोग लाभके समेत मद देत अहिसे ।
जेई मोरी मत्त हते अब बहि अहि मते,
अहैं बीतें अहिमोर वहिअहिअहिसे ॥ २ ॥

---

१ स्वाभाविक ही। २ थे। ३ भोगलाभके कालमें उनदिनोमे मेरेको अहि अर्थात् सर्प जैसा मद होजाताथा अर्थात् कामके लाभ होनेसे क्रोधरूपी मद सर्पकी तरह पैदा होजाताथा। ४ और अबतो जो मेरी बुद्धिका नाश किया करतेथे वे दिन चले गये और वर्तमानमें बीतने वाले मेरे दिन तो मयूरके समान है और बीत चुके है वे सर्पो जैसे थे अर्थात् उन सर्पोको वर्तमान मयूर निगल गये है

श्लोकः ।

यदासीदज्ञानं स्मरतिमिरसंस्कारज-
नितं तदा दृष्टं नारीमयमिदमशेषं जग-
दपि ॥ इदानीमस्माकं पटुतरविवेकां-
जनजुषां समीभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि
ब्रह्म तनुते ॥ ८७ ॥

पुनः वही झूलना।

भोगसंयोगकर दुष्टअज्ञानअरिमोरउरमांहिभयोपुष्टभाना
समरके तिमरमै संसकारोपजेसारसंसारकोनारिजाना
बुद्धिकेनैनमोज्ञानअंजनदियोपादत्रैनैनकेसव्यमाना ॥
भयोअबचतुरमैंलोकदशचतुरमैंब्रह्मकोवेदकरभेदहाना२

श्लोकः ।

यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदांधः सम-
भवं तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं
मम मनः ॥ यदा किंचित् किंचिद् बुध-
जनसकाशादवगतं तदा मूर्खोऽस्मीति
ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ॥ ८८ ॥

पुनः कवित्त ।

चीनो जबकिंचित कारिंद यों मदांध भयो,
तबीमोहिं जानलीनो सर्बी ज्ञाता आपको।

तास मदतापके प्रताप कर मोरे मन,
माहिं कछु रह्यो नाहिं ज्ञान पुण्यपापको ॥
स्वच्छ सतसंग कीनो तब कछु कछु चीना,
मूढ जानो आपको विहानो मद तापको ।
साधुनको[1] मेलाचारु मेलेचारुसाधनको,
जाहिंके प्रतापकर पायो मैं निजापको ॥ ४ ॥

श्लोकः ।

इयं बाला मां प्रत्यनवरतमिंदीवरदल-
प्रभाचौरं चक्षुः क्षिपति किमभिप्रेत-
मनया ॥ गतो मोहोऽस्माकं स्मरकुसुम-
बाणव्यतिकरज्वलज्ज्वालाशांता तदपि
न वराकी विरमति ॥ ८९ ॥

पुनः वृद्ध नराच छंद ।

सप्रीति नीच नारिए सदीवमें निहारहै ।
सरोज नील पत्रकांत चोरचक्षु डार है॥
इने अलक्ष भावको लखो चुँरात चित्तमों ।
रचोरनैनसानमें स्वभावको निहारहै ॥
भयो विशुद्ध मोहि चित्त मोहको निमित्तनाहिं ।
मैन फूल वानकी कृशानुको प्रहार है ॥

---

१ साधुपुरुषोका मेला चारु अर्थात् उत्तम होताहै क्योंकि ज्ञानके वैराग्यादि चारा साधनोंको मेल देताहै ।

अजेपिएछिनार नारि नारको न फेरहै ।
तियाक्षस्यालतेनमेर चित्त शेरहारहै ॥ ८ ॥

दोहा ।

नाँहिंमेरुमनमेरको, दृगपंतपरझूल।
चपलसकेकरअज्ञके, चित्ततूलके तूल ॥९॥

श्लोकः ।

रे कंदर्प करं कदर्थयासि किं कोदंडटंकारवैः रे रे कोकिल कोमलैः कलरवैः किं त्वं वृथा जल्पसि ॥ मुग्धे स्निग्धविदग्धमुग्धमधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं चेतश्चुंबितचंद्रचूडचरणध्यानामृतं वर्तते१०॥

पुनः कवित्त ।

रे रे मीनकेतु किं कसीस देत पानको,
कमानके टंकार ध्वनो सों नमन त्रसहै ।
अरी मूढ पिक काको मृदु चारु वचनाँको,
वृथा बकें न असाँको ताँको कछु रस है ॥
मुगधे सनिगध विदगध मुगधलोल,
मधुर कटाक्षों तेरे करमोंको बस है ।

१ मेरे मनरूपी मेरु पर्वतको स्त्रीके नेत्ररूपी पतंगोंके पडनेसे झूल (चंचलता) नहीं होती किन्तु जिन अज्ञानी पुरुषोंके चित्त तूल (रुई) के तुल्य हलके हैं उनहींको वह पतंग चपल करसकताहै ।

चंद्र चूडामणि जाँके चुमे चित्त पाँउँ ताँके,
बीच अमीध्यानवाँके मेरो मन वसहै ॥ ७ ॥

दोहा ।

तव पदाति थो भ्रांति मों, भ्रम्यों गेंद कपिसान ॥
चित्तशाँत गत भ्रांति अब, मैं प्रभु अनुग भवाँन॥८॥

श्लाकेः ।

महेश्वरे वा जगतामधीश्वरे जनार्दने वा जगदंतरात्मनि ॥ न वस्तुभेदप्रतिपत्ति-रस्ति मे तथापि भक्तिस्तरुणेंदुशेखरे ॥९१॥

पुनः चौपाई ।

स्थावरजंगमसभजगताके । ईश्वरपरमनाथगिरिजाके ॥
अरश्रीविष्णुदेवकेमाहीं । जाँमहिं कछूविषमतानाहीं॥९
सर्वात्मा सबजग के अंतर । व्यापरह्यो समएकनिरंतर।
पुनःउमाधवमाधवदोमहिं। भेदवतीमतिमोमहिंसोनहिं
तदपिसुममभक्तीमधताँके । तरुणशशाँकशेखरेजाँके ॥
भेंदभेदजासकरुणाते । ममअतिभक्तितासमैंताँते॥११॥

श्लोकः ।

मातर्मेदिनि तात मारुतसखे तेजः सुबन्धो जल भ्रातर्व्योम निबद्ध एष भवतामंत्य–

हे प्रभो शंकर! मै अब आपका अनुग अर्थात् अनुसरण करताहूं ।

प्रणामांजलिः ॥ युष्मत्संगवशोपजात-
सुकृतोद्रेकस्फुरन्निर्मलज्ञानापास्तसमस्त-
मोहमहिमा लीये परब्रह्मणि॥ १२ ॥

पुनः छप्पैय ।

वसुधा मात के बंधबंधुशुभहे सखि आगे
तात वात वरभ्रात गगन मैं तुमसब आगे ॥
एह अंतकी नमो जोरकर करों ःसदीने ॥
तुमरे संगप्रताप सुकृतमैं सर्वजुकीने ॥
तिनज्ञान भानु निर्मल कयों हान महा तममोहसबःॊ॥
मैं लीन भयो परब्रह्ममैं तुमसों रह्यो न काम अब १२

श्लोकः ।

मातर्लक्ष्मि भजस्व कंचिदपरं मत्कां-
क्षिणी मास्म भूभंगेभ्यः स्पृहयालवो न
हि वयं का निस्पृहाणामसि ॥ सद्यः
पूतपलाशपत्रपुटके पात्रे पवित्रीकृते
भिक्षासक्तुभिरेव संप्रति वयं वृत्तिं समी-
हामहे ॥ १३ ॥

---

१ क—जल ।२ हे अभिरूप सखे ।

पुनः नील छंद।

मो तज मात रमा अब तू भज आन किसे।
जे तव भोगन हेत भजें तुम सेबि तसे॥
मैं न चहों भवभोग कहा तुम मोहि भजें।
लागतकीनिसप्रेहनकी चहिती न लजें॥ १३ ॥
पत्र पवित्र पलाशके नौवन ते हरके।
सुंदर ताँपुटका कर मैं करमैं धरके॥
भीखपवित्र पवित्रघरे सत बादि गहों।
गंगकि पाथ कि साथ भखों कुखि दाह दहों॥ १४

सोरठा।

हम योगी निहकाम, प्राणधरें इम हर भजें॥
तुमसों रह्यो न काम, रमो रमा भोगी जहाँ॥१५॥

श्लोकः।

यूयं वयं वयं यूयमित्यासीन्मति-
रावयोः॥ किं जातमधुना येन यूयं
यूयं वयं वयम् ॥ ९४॥

पुनः कवित्त।

पूरबले दिनों विखे तेरी मेरी प्रीति सखे,
ऐसे होति भई तुम हम हम तुम हैं।
एकठो विहार शैन बैसनो अहारहुतो।

अब कहा भयो तुम तुम हम हम हैं ।
ताते तबे परे जल लवजलजातसोऊ,
जलजातपरेटरे तूं मैंताँकिसम हैं ।
आदि निरेभेदवति मतिनिरैवेद हती,
तोरा मोह तोग मोहि ताँते उपरम है ॥ १६ ॥

श्लोकः ।

अशीमहि वयं भिक्षामाशावासो वसीमहि ॥ शयीमहि महीपृष्ठे कुर्वीमहि किमीश्वरैः ॥ ९५ ॥

पुनः तोटक छन्द ।

हम भोजनभीखकुअन्नकरें ॥दिगचारकेअंबरचारधरें ॥
कलंभूतलपै सुखसंगसमें ॥कछुकाजनराजनसाथहमें ॥

श्लोकः ।

न नटा न विटा न गायना न परद्रोहनिबद्धबुद्धयः॥ नृपसद्मनि नाम के वयं स्तनभारानमिता न योषितः ॥ ९६ ॥

---

१ अर्थात् तू जलबिंदुवत् है और मैं तप्तलोहवत् हूं अथवा मैं कमलपत्रवत् निर्लेप हूं ।२ परस्पर अभेदवाली । ३ वैराग्यने विनाश करी । ४ स्वच्छ ।

पुनः त्रोटक छंद ।

नटभाटविटाभटगीतकना । परद्रोहविखेहमप्रीतिकना ॥
कुचभारनिमीललनानहमें । नृपधामसखेकितकामरमें ।

श्लोकः ।

यदेतत्स्वाच्छंद्यं विहरणमकार्पण्यमशनं सहार्यैः संवासः श्रुतमुपशमैकव्रतफलम् ॥ मनो मंदस्पंदं बहिरपि चिरस्यापि विमृशन् न जाने कस्यैषा परिणतिरुदारस्य तपसः ॥ ९७ ॥

कवित्त ।

स्वच्छ व्यवहार विना दीनता अहार बनौं,
सदाचार वार जनौं बीच बास लयोहै ।
वेदाध्येन ब्रह्म इक शांत फल लाभ इक,
मंद मंद मनको संपद दरशायो है ॥
ऐसे गुणोंसों संपन्न भयो अब मेरो मन,
कौ उदार पुण्य जिन ऐसो फलां दयो है ।
चिर रातों मांहिशोधा नाँहिं हम ताँहिंबोधा,
तपतोनकोऊकियो हरद्यालभयोहै ॥ १९ ॥

दोहा ।

भरतशतक वैरागको, अलं नवम अध्याय ।
ताँमैं अनुभव भरतको, गायो कवि सत भाय२०

दोहा ।

करुणाकर दशमे भनैं, साधारण उपदेश ।
नवश्लोक कर जनोके, हने कलेश अशेष ॥ १ ॥

श्लोकः ।

न संसारोत्पन्नं चरितमनुपश्यामि कुशलं विपाकः पुण्यानां जनयति भयं मे विमृशतः ॥ महद्भिः पुण्यौघैश्चिरपरिगृहीताश्च विषया महांतो जायन्ते व्यसनमिव दातुं विषयिणाम्॥९८॥

नराच छंद ।

विचित्र ए चरित्र जो भयोतपन्न लोकमैं ।
मनाक मात्र क्षेमरूप तास नाविलोकमैं ॥
विपाक पुण्य पुंजको विचारहों अहं जबे ।
वही कनंत भीतिको जनंत हैं सही तबे ॥ २ ॥
महाँन पुण्य वृंदको कलेश धार जो करे ।
महाँन भोगनारिलौ वसें तबें चिरंघरे ॥

वरिष्ठमान भोगते सराग सो भुगंतहै।
लखे न जंतु कालको जु कौन काल हंतहै ॥ ३ ॥
विखे पुमान दोविषे अवश्य एक तोटरे।
चले प्रतंत्र भोग जे अनंत रोगको धरे ॥
जनाप जो तजे इनें भजे निजापको तबे ।
मतो समष्ट्र को अमून होत अन्यथा कबे ॥ ४ ॥
निकाम मोक्षको करें सकाम ते जमे मरे ।
अहो सकाम काममों तथापि मूढ संचरे ॥
लखे सकाम काममों ततज्ञ अग्निके समा ।
हहा कहा वृथा विते सुअज्ञ ताहिं मों समा ॥ ५ ॥

दोहा ।

मुक्ति हेतु निहकामहै, भक्त देत सहकाम ॥
केवल दुःख निमित्त है, तजो जनो अपकाम ॥ ६ ॥

श्लोकः ।

आयुः कल्लोललोलं कतिपयदिवसस्था-
यिनी यौवनश्रीरर्थाः संकल्पकल्पा
घनसमयतडिद्विभ्रमाभोगपूगाः ॥ कं-
ठाश्लेषोपगूढं तदपि च ंन चिरं यत्प्रि-
याभिः प्रणीतं ब्रह्मण्यासक्तचित्ता भवत
भवभयांभोधिपारं तरीतुम् ॥ ९९ ॥

पुनः कवित्त ।

सलिल कलोल तुल्य आयुषा चपल कुल,
यौवनकी द्युति पल कछु इसथितहै ।
चलचित्तके समान भाव सब हानवान ॥
घटाविखे छटावत भोग मलइतिहै ॥
कंठमों अलिंगना महानपीन अंगनाको;
ताँते जो आनंद नाहिं चिरसो गहित है ।
नरकाय पाय नरो स्वसरूप चित करो,
भवभयसिंधु तरो पुण्यसमो वितहै ॥ ७ ॥

श्लोकः ।

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो यावच्चेंद्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः ॥ आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान् संदीप्ते भवने प्रकूपखननंप्रत्युद्यमः कीदृशः ॥ १०० ॥

पुनः सवैया ।

निजदेहअरोगसभोगलखोनपिखोजबतीक समीपजरा॥
गुणमोंशकती जबलौंनगती दरशोनहतीजुसबी उमरा॥
निज श्रेयनिमित्त अमित्तकरो पुरुषारथकोसुनरों उचरा॥
जरते गृह कारण कूप खने बहुउद्यमतो अँध कूप परा॥८

श्लोकः ।

कृच्छ्रेणामेध्यमध्ये नियमिततनुभिः

स्थीयते गर्भमध्ये कांताविश्लेषदुःख-
व्यतिकरविषमे यौवने विप्रयोगः ॥
नारीणामप्यवज्ञा विलसति नियतं वृद्ध-
भावोप्यसाधुः संसारे रे मनुष्या विदत
यदि सुखं स्वल्पमप्यस्ति किंचित् १०१॥

पुनः अर्ध नराच छन्द ।

अमेध्य कुक्षिमें महाँ । रुकंत काय सो तहाँ ।
विराजमान होय है । महान कष्ट जोय है ॥ ९ ॥
जबै प्रसूत वायुते । स दुःख बाहिरावते ।
कृमादि गंदग्यादिते । सहे महा विषादते ॥ १० ॥
प्रहार मात तातकी । सहे सखादि भ्रातकी ।
शिशादि मों अनंतही । सहे कलेश जंतुही ॥ ११ ॥
पुना युवा विखे जबै । त्रिया वियोग ह्वै कबै ।
अनंत कष्ट जोय है । सहे न जात सोय है ॥ १२ ॥
पुनाबलादिमैंहशे । निरादरादियों ग्रसे ।
अवाच्य दुःख गावहै । असाधु वृद्ध भाव है ॥ १३ ॥

चौपाई ।

तीन अवस्था तीन कालमें। नहिं अवलोकव सुखकतहूँमें ॥
अज चीटीतें ले भव जेतो। सर्व दुःख करसंयुत तेतो १४
सुखस्वरूपहै एक निजातम। इतर दुःखमयसर्व अनातम॥
ताँसुखव्रूतेकितेसुखजोलव। तौतुमभनौंजनों निजअनुभव॥

जोतुमसुखके प्रापति कारण । सहोदुःखतेदुखतर दारुण
मरणप्रर्यंतकष्टअतिपावो । सुखीस्वसुखतेकबीनगावो।१६।

दोहा ।

जेते सुख सत लोकलौं, तेते देत कलेश ।
आतम सुखते ऋते सुख, किते नहीं लवलेश॥१७॥

श्लोकः ।

भोगा मेघवितानमध्यविलसत्सौदा-
मिनीचंचला आयुर्वायुविघट्टिताभ्र-
पटलीलीनाम्बुवद्भंगुरम् ॥ लोला यौवन-
लालना तनुभृतामित्याकलय्य द्रुतं योगे
धैर्यसमाधिसिद्धिसुलभे बुद्धिं विदध्वं
बुधाः ॥ १०२ ॥

पुनः नील छंद ।

मेघ वितान समान विषे चपला चल ज्यों ।
है शबदादिक भोग सबे अति चंचल त्यों ॥
संघट वारिद वृंद विषे जल वायु हरे ।
काल तथा सब जीवनकी हत आयु करे ॥ १८ ॥
भोगन काज लडावत योजन यौवनको ।
लोलकलोल समान स्वभाव लखो तिनको ॥

विश्व समस्त विनश्वर शोध तुरंत नरो ।
योगविषे निज चित्त अरोपण नित्य करो ॥ १९ ।

दोहा ।

धीरज करके सिद्धजो, सुभग समाधि तुरंत ।
ताँमहिं अरपो मन जनो, पुनर्जन्म ह्वै अंत ॥ २० ।

श्लोकः ।

भोगा भंगुरवृत्तयो बहुविधास्तैरेव चायं भवस्तत्कस्यैव कृते परिभ्रमतरे लोकाः कृतं चेष्टितैः ॥ आशापाशशतोपशांति-विशदं चेतः समाधीयतां कामोच्छित्ति-वशे स्वधामनि यदि श्रद्धेयमस्म-द्वचः ॥ १०३ ॥

पुनः चौपाई ।

विषय भोग जे अनिक प्रकारे।दुखदस रोग विनश्वरसारे।
एततही भवरूप निहारो । विना भोग संसार असारो॥
उतकत हेत जगतकृत अंतर।कीटकपिनवतभ्रमतनिरंतर।
रे लोकोअविलोको नाहीं।शिरपरकाल बाणकरमाहीं॥
क्षणमहिं प्राण हान कर डारे।बली अक्षमी दयानधारे ॥
तुमनिशिदिनअघओघकमाते।बलअबलादिस्वादुमदमाते
जानोमनमोंमरणोंसराचो । तबकत हेतवृथाभवराचो ॥

भाँतिभाँतिभवचेष्टाकरके। लहोकदाचितशांतनमरते २४।
ममवचननमहिंतवश्रद्धाजब।दुस्संकल्पविकल्पतजौतब।
आशापाशबहुतविधिकीजे।तासनिवासनउरमहिंदीजे ॥
रजोतमोमयधीवृत्तीलख। करोतासकोनाशपाशलख ॥
निर्मलसतोवृत्तिसोंमिलकर।नरोकरोतुममननिर्मलतर ॥
ऐसेविशदचित्तकोलोको।सम्यकनिजस्वरूपमहिंरोको ॥
चितचेतनबिबनिर्मलताँते।होहिअभेदसजातीजाँते २७
भेदसजातीपुनःविजाती।स्वगतत्रिभेदअतीतअजाती ॥
ताँतेताँमोंवृत्तिसजाती।अरपोजनोंतुमूदिनराती ॥२८॥
जीवईशकोभेदनभोरा।जाँहिंमिले पुन नाहिं विछोरा ॥
सकलकामनात्यागअधीनो।सर्वेच्छातजताँकोचीन्हो२९॥
याँतनमांहिंनिजातमसुखको। अनुभवकरोहरोभवदुखको
मोरगिरामोंतोरसनेहा।धरोतबेंतुममममतिएहा ॥३० ॥

दोहा

[1]विषम दुखद क्षण भंगमय, भोगि रूप संसार ।:
ताँकोविद संसार सम, कोविद देत निवार ३१ ॥

श्लोकः ।

तस्मादनंतमजरं परमं विकाशितद्ब्रह्म.

---

१ विषम अर्थात् अति टेढामेढा दुःखके देनेवाला तथा क्षण क्षणमे रूपान्तर बदलनेवाला (भोगि) सर्पके शरीर जैसा यह जगत् है। इसका विद अर्थात् ज्ञान (ससार) महाजलजतुवत् निगरजानेवाला हैं अथवा इसको संसार नामक महाजलजीवकी तरह भयानक जानवर कोविद (पंडित) तत्त्ववेत्ता लोग त्याग देते हैं ।

वांछत जना यदि चेतनस्थाः ॥ यस्या-
नुषंगिण इमे भुवनाधिपत्यभोगादयः कृ-
पणलोकमता भवंति ॥ १०४ ॥

पुनः सवैया ।

जबहो बुधिमान पुमान भवानतबीदतब्रह्मकु ध्यान धरो
जुअनंत विकाश परं अजरंवतलाभतियान न लाभ परो
रुचिहेतु विपश्चित केचितकोभवभोग कदाचितहै सगरो
जन नीच करेरति बीचइने अब तन्न विषेइतनोंअँतरो ३२

अथवा तोटकछंद ।

जडरूपसबीतनआनजिते । जिनमेंनशुभाशुभज्ञानकिते
चिदएकलखोनरकेतनको । जिसमाँहिलखेसतचेतनको
सुखरूप अनंतपरं अजरं । अजरूपविकाश अनूपहरं ॥
समयेदशलक्षणआतमके । अधुनारथभाखतहैतिनके ॥
वहिसत्य त्रिकालअबाधजुहै । इनमेंश्रुतिलौकिकमानदुहै
श्रुतिवाक्यसदेव इतादि ररे ।जनजेजनमांतरकामकरे ॥
फलताँकृतकोइतलोकमिले । इतकीकरणीपरलोकफले।
इमजीवमरैनहिंलोकमते । सबजीवकुजीवअहेजिहँते ॥
मनधोतनलौजडरूपसबी । नस्वतेजिनमोंकछुज्ञानकबी
इकचेतनतेसबचेतनहैं।इतिहेतुचिदातमधीरलहैं ॥३७॥
सुखसागरब्रह्मकिअंशकनी।अनुस्यूतत्रिलोकिविषेसघनी

थितकंचनकंदलमाहिंयथा।सबभोगनमोंसुखवाहितथा॥
तिहँते न ऋते सुखनैक किते।सुख मूरति स्वातमहेतुइते॥
नप्रमाणविषेनहिंनाशजिसे।परिपूरणऔनहिंजन्यकिसे३९।
इतिहेतु अनंत निजातम है। परते पर जोपरमातम है।
तन वाम तनै धन धामपरे।जिहँवेदमनादि न वेद ररे४०॥
इति रीतिपरातम वेदभना।अजरातममायककायबिना।
अथवाअशिअग्निकटेनदहे।सबकातमतेअजरासुकहे४१॥
इमपारथकोभगवानरटो। नहिं जन्यअनादिस्वतेप्रगटो
भवहेतु विशेषण चारगहे।तसमातअजातमवेदकहे॥४२॥
नहिंजाग्रतस्वप्ननींदविषे।सकुचातबिकाशस्वरूपविषे॥
थक्कवेदहटेउपमाभनके।त्रिपुटीबिनएकविषे किनके॥ ४३॥
इतिहेतु अनूप पुनः समहीं।दुग्धादिसमं परिणामनहीं।
जितएकरसातमवेदकथा।अथवासबमोंसमरूपतथा।४४
तुम चेतनकायकुपाय नरो।इसचेतनमोंअतिप्रीतिकरो॥
भुवनाधिपतादिकभोगजिते।तवब्रह्मअवांतरणभावितवे४५
द्युति दीप यथा रवि में वरते।नरते इनमें नरजे वरते।
इनमें जन मूढ सनेह करें।एहिहेतु पुनः पुन देहधरें४६॥
तनुचेतन चेतन हेतु भयो। भव भोगन हेतुन देवदयो।
इतिहेतुजनोंतुमभोगतजो।वनमानसमोंनिजब्रह्मभजो४७।

श्लोकः।

त्रैलोक्याधिपतित्वमेव विरसं यस्मिन्म-

हाशासने तल्लब्धवासनवस्त्रमानघटने भोगे रतिं मा कृथाः ॥ भोगः कोपि स एक एव परमो नित्योदितो जृम्भते यत्स्वादाद्विरसा भवंति विषयास्त्रैलोक्यराज्यादयः ॥ १०५ ॥

पुनः कबित्त ।

परम उचित नित्य स्वप्रकाश सत चित,
ऐसे एक ब्रह्ममें को एक जन वसेहै ।
कंजपूत पुरहूत की विभूति भूतशिखी,
घासराशके समान मानके न फँसे है ॥
तीन लोक राज्य आदि संपदा अस्वाद भासे,
जाकी छाया मात्र कर माया मात्र लसेहै ।
ताते भिन्न भोग क्षणभंगुर को राग तजो,
रागद्वेष नाग रिदे बिलमों न धसेहै ॥ ४८॥

दोहा ।

भोग राग जबहीं गयो,गयो द्वेष तिहँ संग ॥
अब बिलाय यहि द्वैतभ्रम,तबै सबै चिदअंग॥४९॥

श्लोकः ।

भोगास्तुंगतरंगभंगचपलाः प्राणाः क्षणध्वंसिनः स्तोकान्येव दिनानि यौवनसुखं

प्रीतिः प्रियेष्वस्थिरा ॥ तत्संसारमसार-
मेव निखिलं बुद्धा बुधा बोधने लोका-
नुग्रहपेशलेन मनसा यत्नः समाधी-
यताम् ॥ १०६ ॥

पुनः कवित्त ।

तुंगभोग इंद्रलोक सत्यलोकलग जेजे,
तेतेही तरंग सम भंग पहिचानो रे ।
जीवनके जीवने की रास एक श्वास सोऊ,
दामनी समान क्षण माहिं हौंन जानो रे ॥
यौवनको सुख थोरे दिनोंमें विमुख हो रे;
मीतन की प्रीति पुनि नीति न पछानोरे ।
सकल संसारको विचारके असार तजो,
बोधहेतु बुद्धिमानो मेरी बुद्धि मानो रे ॥ ९० ॥

दोहा ।

भुख आत्माके दर्शहित, चिता दर्शको शोध ॥
सभ पर करुणा रेणु कर, विनशे द्वैत विरोध॥९१॥
दशमो सर्व सुहृद अती, भयो सुअंतर्धान ।
हरे सकलके दुःखको करे, वेग कल्यान ॥ ९२ ॥

सोरठा ।

रुद्राध्याय मँझार, अधुना निंदहिं नारिको ।
चार श्लोक उचार, जाते तजे उदार त्रिय ॥ १ ॥

श्लोकः ।

स्तनौ मांसग्रंथी कनककलशावित्युपमितौ मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशांकेन तुलितम् ॥ स्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरकरस्पार्धि जघनं मुहुर्निंद्यं रूपं कविजनविशेषैर्गुरुकृतम् ॥ १०७ ॥

पुनः कवित्त ।

मांसग्रंथि कुचनको कंचनके कुंभ कहैं,
सोमसम मुख कफधामको उचारेहैं,
चंपाकलीके समाने दाडिमकेदाने भाने,
हाडनकी दांतपाँतिको दिवाने सारेहैं ॥
मूत्र भिगी जंघनकी संघनी बडाई भने,
निंदत गजिंद कर केलाको जिवारे हैं ।
अहो निंदायोग्य रूप अंगनाको ताकी रूप,
ध्वने मतवारे शीश धुने मतिवारेहैं ॥ २ ॥

श्लोकः ।

दीनादीनमुखैः सदैव शिशुकैराकृष्टजी-

र्णांबरा क्रोशद्भिः क्षुधितैर्निरन्नविधुरा दृश्येन्न चेद्गेहिनी॥याच्ञाभंगभयेन गद्गदगलत्त्रुटद्विलीनाक्षरं को देहीति वदेत्स्वदग्धजठरस्यार्थे मनस्वी पुमान्॥ १०८ ॥

पुनः कवित्त।

जठराग जार पेट निजताके शांत हेतु,
कौन मानी प्राणी देहि वाणीजो उचारहै।
गदगद गलत तुटत लीनअंक जामें,
याँचाभंग भैसों ऐसी गिराभी न ररहै॥
भूखे बार रोके गार देके टूको मांगे माते,
दीनादीनमुख जाके क्षीणा पट हरहै।
जौलौंऐसी निजनारी व्याकुली निहारी नाहिं,
पेखनेते पेखने ज्यों नाचे घरघरहै॥ ३॥

श्लोकः।

सत्यामेव त्रिलोकीसरिति हरशिर-

---

१ भूखे बालक रोरोकर अपनी मातासे गाली देकर खानेको मागते हुए तथा भूखेसे दीन और क्रोधसे अदीन मुखोवाले होकर अपनी माताके ऊपरका फटासा वस्त्र खेचते हुए पुत्रोंवाली अपनी नारी जबतक ऐसी व्याकुल नही दिखे तबतक कौन मानी प्राणी दीन वाणीको कह सकताहै. अर्थात् कोई नही परन्तु ऐसी अपनी स्त्रीके देखनेसे इस पुरुषको पेखने अर्थात् तमाशेके बन्दरकी तरह घरघर नाचना पडताहै।

श्चुम्बिनीविच्छटायां सद्वृत्ति कल्पयंत्यां वटविटपभवैर्वल्कलैः सत्फलैश्च॥ कोऽयं विद्वान् विपत्तिज्वरजनितरुजातीवदुःखासिकानां वक्त्रं वीक्षेत दुःस्थे यदि हि न बिभृयात् स्वे कुटुंबेऽनुकंपाम्॥१०९॥

पुनः दोहा ।

दुरत हरत त्रैलोकके, तुरत त्रिलोकी सरित ।
ईश शीश की जटाको, छुहति छटा जिहँ सरंत ॥४॥
तातटपर संघट विटप, वल्कल फुल फल दाय ।
सुखद सर्वदा रुचित शुचि, शुभवटादिकी छाय ५॥

सोरठा ।

अस सुरसरि के होत, कृपन नृपन दुर्मुखनको ।
निरखत निपुणन कोतं, निजकुख पोषणकारणे ६॥

दोहा ।

उत्पत विपता तापते, दुसह दुःख जु क्षुधादि ।
निज कुटुंब अस विकल लख,करे सुजन जु प्रसादि
वही पुरुष परिवारकी, विपता हरण निमित्त ।
वायक सायक खलोंके, सहे सही हितवित्त ॥ ८॥
दुखी देख परिवार निज, दुखी होत मतिहीन ।

१ गमन करती हुई । २ तरफ ।

भ्रष्ट आतमानंद ते, भयो दीन ते दीन ॥ ९ ॥
करुणा करे कुटुंबपर, दुखी देख तिहँ अंध।
नरते दुख टरते न तिहँ, जो अदृष्ट प्रतिबंध ॥१० ॥
जासं कृपाकी कृपाकर, नाश उभय आनंद ॥
ता करुणाते नरनको, मरणा शुभ विन मंद ॥११ ॥

सोरठा ।

तितितितिकरतेकाम, भवतदुःखपरिणाम जित ॥
त्रियानुकंपा दाम, गरे परी पशुवतचरे ॥ १२ ॥

दोहा ।

दुःखविसर्जनकृपणधी, सहित कष्टतेकष्ट ।
निशिवासर आसुरमती, करत स्वापकोनष्ट ॥ १३ ॥
बह्योजात भव सिंधु महिं, पायो कष्ट अवाच ।
दया न शठ निजपर करे, जाते दुखते बाच ॥१४ ॥
सुजन मया निजपर करे, अपने करे उधार ।
भजे हरी हरिद्वारको, तजे कुटिल परिवार ॥ १५ ॥

सोरठा ।

मात तात गुरुनारि, जो विघनी हरिभजन महिं ।
ताको डार उदार, हरिभज जन्मसफल करे॥ १६॥

---

१ जिस कुटुब पर कृपाकी कृपासे इस पुरुषका लोक परलोकका अथवा। व्यवहार परमार्थका उदय आनन्द नाश होताहै उस करुणासे तो पुरुषाको मरन अच्छा है परन्तु (मन्द) मूर्खके विना अर्थात् मूर्खको मरना काम नहीं परन्तु विचारशीलको तो मरना ही अच्छा है । २ अपने आपको ।

श्लोकः ।

विरमत बुधा योषित्संगात्सुखात्क्षणभं-
गुराद्व्रजत करुणामैत्रीप्रज्ञावधूजनसंग-
मम् ॥ न खलु नरके हाराक्रांतं घन-
स्तनमंडलं शरणमथवा श्रोणीबिंबं रण-
न्मणिमेखलम् ॥ ११० ॥

पुनः चौपाई ।

योषित युत संभवसुखजोऊ। हरोनरोक्षणभंगुरसोऊ ॥
आयुस्पर्शमात्रहैताकी। भोगतपरमदुःखतिहँबाकी ॥ १७ ॥
भोगानन्दनधनबिनपावत। बिनाअनर्थद्रव्यनहिंआवत।
विषयभोगसुखलाभनिमित्त। करअनर्थकछुसंचितवित्ता ॥
ताकरदुखमिश्रितसुखभोगत। ताफलमरकरलहितअधोगति
तातेनखशिखाग्रलौंनारी । मोक्षविषेप्रतिबंधकभारी ॥
निकरदुखांकुरत्रियकेगाता। तजेत्रिधाविधिताहिंप्रमाता ।
घनकुचमंडलमृदुरमणीको। संयुतमुक्ताहारमणीको ॥ २०
सर्वओर अति सुंदरलागे। हेरत जास मनोभव जागे ॥
हेममणीमयबणीतडागी। श्रोणीबिंबोपर वरलागी ॥ २१
अतिशब्दायमानअभिरामी। जिहंध्वनिसुनजनमुह्यतकामी
अंग अंगनाकेहैजेते। हेतुअनंगागनिके तेते ॥ २२ ॥
तामें जंतु निरंतर जरते। उरविचारमय वारिनधरते ॥

क्रोध लोभ मोहादिवक्रछल। [१]खौमनेकैमनतुल्यबल
एक पंचशरको जहँवासा।तहाँ क्रोधलौकरहिंनिवासा॥
जहाँ एककी गणती आवें।तहाँ अनेक अवश्यरहावें२४
नरतनु मों जन्में अरु मरहैं।जबकुसंगसतसंगतिकरहैं ॥
सर्व अनर्थहेतु सुख हंता। गर्जत सब अपवर्गप्रयंता२५
सब संबर सम उरकोजारत।शमदमादिसंतोपहिंटारत॥
त्रियके गात सुअंबर भूषण।दर्शे कबी विलोकेदूषण२६
जाकरमन्मथमथेनमनको ।नाँतरमनवपुहैत्रियतनको ॥
लगो बाम मों कामउपावे।प्रथम विवेक शमादिनशावे॥
छलामर्ष मदमोहसनेहा।इनहिं अवयवहिंसहित अदेहा॥
भयोपुष्ट प्रतिजन्म मँझारी।बृहद्भानुइव जारत भारी २८
याविधिनिकरअवधहतकरके।परतनकरमहिंजबनरमरके॥
तहाँताहिंनरकागनिजारे। दुःखअवाच्यअनुभवहिंसारे॥
तेकतनरकदुःखतेराखाहिं।नहिंराखहिंप्रतितामहिंराखहिं॥
इत उत माहिं तपाघनवारे।नारिअवयवहृदयजबधारे॥
ताते संगवाम को तजिये। नातर अवरवधूजनभजिये॥
करुणा मैत्री प्रज्ञाभारी। सेवहु सुखद अयंत्रय नारी॥

१ इस पुरुषशरीर ही मे इन कामादिकोका विशेषरूपसे जन्म होताहै और इसीमे सत्सग मिले तो इनका मरण भी होताहै ।२ कामादि सभी(सबर)शांति जलकी तरह उरमे प्रवेश कर उसको जडीभूत कर देतेहैं अथवा सबी सबर कहिये अतिबली हैं तथा समान है और मिलके उरको जलाते रहते है । ३ कामदेव ४ अग्नि ।

सोरठा ।

मतदर्शो त्रिय अंग, जा कदापि चूके पिखो ।
निश्चय लगे कलंक, भाद्र चौथ के चंद्रवत ॥ ३२ ॥

दोहा ।

त्रियानिंद एकादशो, अलं भयो अध्याय ।
बल गुण गण नरके हरे, मरके नरके पाय ॥ ३३ ॥

दोहा ।

वृद्धावस्था द्वादशे, पांच छंद कर निंद ।
दुःखनिरादर चिंतमिधि, दिनपौरुष मतिमंद ॥ १ ॥

श्लोकः ।

वर्णं सितं समभिवीक्ष्य शिरोरुहाणां
स्थानं जरापरिभवस्य तदेव पुंसाम् ॥
आरोपितास्थिशकलं परिहृत्य यांति
चांडालकूपमिव दूरतरं तरुण्यः ॥ १११ ॥

कवित्त ।

जराकर सेत वार नरोंके निहार नारि,
करें ताहिं त्रिसकार भांगे फेर नारिको ।

---

१ अर्थात् अधम पुरुष तिरस्कारको सहकर भी फिर उसी स्त्रीको चाहता है और स्त्री उस वृद्धपुरुष के हाडरूपी घटीको और रज्जुरूपी नाडिओंको तथा मेदमज्जादि रसरूपजलको मन्द देखकर ऐसे छोड देती है जैसे कुलीन ब्राह्मणकी स्त्री चमार के कूपपर उक्त-

हाड घटी रज्जु नारि मंदर सहेर डार,
विप्रनारि वृद्धरूप कूप चमिआर को ॥
दाहे तीनें ताप भानु नैन बैन ज्ञान कान,
तजें ताहि मात आदि ज्यों उदार दारको ।
अहो कष्ट जीव दुष्ट तजे न अनिष्ट अजे,
नारी तजे तनु भजे मन अजे नारिको ॥ २ ॥

श्लोकः ।

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयंती
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरंति देहम् ॥ आयुः
परिस्रवति भिन्नघटादिवांभो लोकस्तथा-
प्यहितमाचरतीति चित्रम् ॥ ११२ ॥

दुवैया छंद ।

व्याघ्रीके सम स्थित ह्वैकर जरा अवस्था करति प्रहार।
तीक्षणक्रूर नखाग्र रोगकर परिताडत तनुको बलधार ।
उचित अवध परिस्रवत सतत इव फूटे घटते छूटेवारि

—निषिद्ध सामग्रीको देखकर उस कूपको छोड देवे । १ आध्यात्मिक आधिदैविक तथा आधिभौतिक यह तीन ताप रूप सूर्य उस वृद्धको तपाताहै और नेत्रोंसे देखना मुखसे बोलना चित्तकी ज्ञानशक्ति कानोंसे सुनना यह सब उसके जाते रहते है अर्थात् जैसे विषयी पुरुष माताके समान वृद्धा स्त्रियोंसे उपराम रहताहै वैसेही नेत्रादि इन्द्रिय भी वृद्ध पुरुष से उपराम होजाते हैं । २ शरीरमें नाडियां भिन्न २ दीख रहीं हैं ।

लोक सो अहित तदपि आचर है अहो करे हित नांगीकार ॥ ३ ॥

श्लोकः ।

गात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दंतावलिर्दृष्टिर्नश्यति वर्धते बधिरता वक्त्रं च लालायते॥वाक्यं नाद्रियते च बांधवजनैर्भार्या न शुश्रूषते हा कष्टं पुरुषस्य जीर्णवयसः पुत्रोऽप्यमित्रायते ॥ ११३ ॥

मनोज छंद ।

सकुचे सब अंग विभंग सुचाल ।
पुन भ्रष्ट समष्ट भई रद माल ॥
द्युति लोचनकी सब मोचन अस्त ।
नहिं कानसुनेकलहा न समस्त ॥ ४ ॥
मुख मध्य भई कफ वृद्ध महान ।
इतिहेतु स दुःख गतागत प्राण ॥
कछु याचन हेतु मुखों जब वाच ।
जन बंधु बकें तब वाक्य अवाच॥ ५ ॥
ललना पलना मिलनाजु तजंति।

१ ललना अपनी स्त्री जोकि(बिछौना) शय्या पर मिलकर छोडा नहीं करती थी अथवा पलभर न मिलनेसे जो अनाज छोड देती थी वह भी अपने (नाह) पतिकी सेवा नहीं करती ।

नहि नाइ कि सेव कु नाँहिं करंति ॥
पुनि जीरण आयुष मानुष जोय ।
निज पुत्र अर्पी सम शत्रु विलोय ॥ ६ ॥
तिनके दुर्वायक सायक संग ।
उर वेधत भी न तजे तिन संग ॥
इति रीति व्यतीत भई सब आउ ।
न अजेपि तजे निज मंद सुभाउ ॥ ७ ॥

दोहा ।

जरा उपाय न ह्वै सके, जरा आयुके माहिं ।
भवसागरके तरणको तरुण अवस्था आहि ॥८ ॥

श्लोकः ।

**वलिभिर्मुखमाक्रांतं पलितैरंकितं शिरः ॥
गात्राणि शिथिलायंते तृष्णैका तरुणाय-
ते ॥ ११४ ॥**

कवित्त ।

आनन की छबि वली गणोकर टली गली,
काननकी गली बलअंकोंमै न भासहै ।
लोयनके माहिं कछुलोय नाहिं परे स्वच्छ,
रसना मो रसनाशो नास कला नाश है ॥
केश भए उजर न रह्यो कछु उजर,

जवानी गई उजर न श्वासको विश्वास है ।
तृष्णातो अनंत अंत भयो है संघात सब;
शांति भई शांत नाहिं शांत भोग आशहै ॥ ९ ॥

श्लोकः ।

निवृत्ता भोगेच्छा पुरुषबहुमानो विगलितः समानाः स्वर्याताः सपदि सुहृदो जीवितसमाः ॥ शनैर्यष्ट्युत्थानं घनतिमिररुद्धे च नयने अहो धृष्टः कायस्तदपि मरणापायचकितः ॥ ११५ ॥

कवित्त ।

तनुवृद्ध भएते नवृद्ध भईभोग इच्छा,
मनमें तोभोगनकी कोटिमन रतिहै ।
सने सने उतथान लोचनकी द्युतिहान,
मानवको बहुमान हानभयो अतिहै ॥
सखे सम वैसवारे प्राणोवत जेईप्यारे,
कबके पधारे नाक देखी ऐसी गतिहै ।
अहो अजे नीच निज मीच बीच हासी भजे,
जीवन चहित मृत्यु जीव न चहतिहै ॥ १० ॥

सोरठा ।

दुख अनेकको गेह, विना विवेक विवेककर ।
निंद जरजरो देह, भयो इति श्रीद्वादशो ॥ ११ ॥

दोहा।

कहें त्र्योदशे कृपाकर, संकीरण उपदेश।
शंकर बीस श्लोक कर, जन मन नलिन निदेश॥१॥

श्लोकः।

जातः कूर्मः स एकः पृथुभुवनभरायार्पितं येन पृष्ठं श्लाघ्यं जन्म ध्रुवस्य भ्रमति नियमितं यत्र तेजस्वि चक्रम्॥
संजातव्यर्थपक्षाः परहितकरणे नोपरिष्टान्न चाधो ब्रह्मांडोदुंबरांतर्मशकवदपरे जंतवो जातनष्टाः॥११६॥

गीया मालतीछंद।

है धन्य कूरम एक सो पर अर्थ जिहँ भव लीन है।
पृथु भुवन भारतरे जिंन निज पृष्ठ अर्पण कीनहे॥
अतिजन्मध्रुवकोयोग्यकीरतिजासकीरतिहरि विखे।
चौफेर जाँके तेज चक्र भ्रमंत रोक्यो सब पिखे॥२॥
ज्यों मशक गूलर फलविषे संघट महा संकट सहें।
पख वृथा संभव ताहिंके नहिं अर्थ ऊर्द्ध विचररहे॥
संजात जहँ मर जात तहँ ब्रह्माण्डमें त्यों जन्तु हैं।
नहिं ज्ञात धर्माधर्मकी संभोगमें रतिवंत हैं॥३॥
परमार्थ अरु परस्वार्थ द्वै वृत्ति पंख संयुत जन सबे।

प्रारब्धके वशिस्वार्थके पुरुषार्थकरते संदबे ॥
जनजहाँ लागे प्राण त्यागे विनतिसे नहिं तजत हैं ।
संवेद युक्ति न बंध निज अश्रेयको जड भजत हैं ॥ ४॥

दोहा ।

गूलर फल ब्रह्मांडमों, मच्छर मानव आन ।
गहें मुक्ति बिन जन्मगण, स्वपर अकिंचितज्ञान५॥

श्लोकः ।

स जातः कोप्यासीन्मदनरिपुणा मूर्ध्नि धवलं कपालं यस्योच्चैर्विनिहितमलंकारविधये ॥ नृभिः प्राणत्राणप्रवणमतिभिः कैश्चिदधुना नमद्भिः कः पुंसामयमतुलदर्पज्वरभरः ॥ ११७ ॥

कवित्त ।

वही जन जनमे कपालजाके उज्ज्वलको,
धारयो समरारि शिरे ऊचो अलंकार मान ।
मानद अमान मान जाको तन धन हान,
परकामहेत होत वही जन धन्य जान ॥
केचित इदानी प्राणी वृथा महा मानी भये,
अबलादि याचकान कीनो मान जो महान ।
तास मान तापते पुमान कैसे तपे आप,
मानके समान सापमानको न करेमान ॥ ६ ॥

दोहा ।

अहंकारते होत सब, क्रतु व्रतादि फल हान ।
अरु विन गुण जो दर्प है, सो अरि सर्प समान ॥ ७ ॥

सोरठा ।

ताँते मत मतिमान, मान करे अभिमानको ।
गर्व सर्व दुख खानि, सुख अवास मद नाश है ॥ ८ ॥

श्लोकः ।

पातालान्न समुद्धृता वत वलिर्मृत्युर्न नीतः क्षयं नोन्मृष्टं शशिलांछनस्य मलिनं नोन्मूलिता व्याधयः॥ शेषस्यापि धरां विधृत्य न कृतो भारावतारः क्षणं पौरुष्यं त्वकृतं रुषाभिगणनां मिथ्या वहन् खिद्यते ॥ ११८॥

कवित्त ।

वलिको पतालसे निकालके न नाक पठ्यो,
कालको न नाश कीनो भव रिपु पीनो है ।
विधुकी न मैल धोई व्याधिकी न जड खोई,
शेषशीश भारसो न काहू क्षण लीनोहै ॥
पौरुष न कछु कीनो क्रोध ,अभिमान पीनो,
वृथा मान लीनो नर नाग सिंह चीनोहै ।

कीकरको तरुलाये कीकर सुफल पाये,
साधुनको पद चाहै साधनते हीनोहै ॥ ९ ॥

श्लोकः ।

रम्याश्चंद्रमरीचयस्तृणवती रम्या वनांतःस्थली रम्यः साधुसमागमः शमसुखं काव्येषु रम्या कथा । कोपोपाहितबाष्पबिंदुतरलं रम्यं प्रियाया मुखं सर्वं रम्यमनित्यतामुपगते चित्ते न किंचित्पुनः ॥११९॥

सवैया ।

रमणीकमयंककिया किरणाकलभूमि बनातहरेतृणवारी ॥
सतसंगतिसुंदरचारुसतोसुखमंजुनिबंधकथामृत भारी ॥
रुठसोंउठकंलवलोचनतेसुठताँ मिलनारिमुखांबुजकारी ॥
कमनीयसबीचितशांतजबीरमणीय तबीनकछूनिरधारी ॥

दोहा ।

दुखानंद अरु मित्र अरि, पुना सुरूप कुरूप ।
द्वंद्ववादपरमादमों, अप्रमादशिवरूप ॥ ११ ॥

सोरठा ।

निज कुख पोषण काम, तुल कुल दीन कबी न ह्वै ।
याचे वन वा ग्राम, मानी प्राणी धन्य बहु ॥ १२ ॥

श्लोकः ।

पुण्ये ग्रामे वने वा महति सितपटच्छन्न-
पालीं कपालीमादाय न्यायगर्भद्विज-
हुतहुतभुग्धूम्रधूमोपकंठम् । द्वारं द्वारं
प्रवृत्तो वरमुदरदरीपूरणाय क्षुधार्त्तो
मानी प्राणी सुधन्यो न पुनरनुदिनं
तुल्यकुल्येषु दीनः ॥ १२० ॥

सवैया ।

वनग्रामनमोंढकपालीकपालीसितांबरसोंगहिभीखस्वतंतर
जिहधामनमोवरवामनहोमतआज्यतिलाहिप्रजारषसंतर ।
तिहँ होमके धूमसों मंदिरकोलख धूसर अंतर भागनिरंतर ।
विचरे सुप्रसाद प्रसाद विषे भख आदि.प्रसादभखे परतंतर ॥

सोरठा ।

जो जन मानीआहि, भोजन भिक्षा को करै ॥
वायक सायक नाहिं, सहे सजाती जनोंके ॥ १४ ॥

श्लोकः ।

येनैवांबरखंडेन संवीतो निशि चंद्रमाः ॥
तेनैव च दिवाभानुरहो दौर्गत्यमेतयोः १२१ ॥

दोहा ।

जिसअंबरके खंडकर, निशिमहिं सोम विताति।
तिसे खंड कर पुनि दिने, मारतंड संवीत॥१५॥
अद्भुत दुर्गति दुहुँनकी भ्रमत सर्वदा जोय ।
चतुहेंतु यामो कहे, लहे चतुर नर कोय ॥१६॥
कैधों कर्मविपाकको, विधुदिनमणिभोगत ।
विन भोगे भागे नहीं, कर्मगती बलवंत ॥ १७ ॥
कै हरि भय लखि जगतको, सेव करत द्वयदेव ।
कीधों हरि आज्ञाकरी, भत्र मर्याद हितेव ॥ १८ ॥
अथवा संत जनानके, लक्षणको दर्शंत ।
हेर शुभाशुभ लोक गति, ह्वैअसंग विचरंत॥१९॥
तजहिं आपदा माहिं भी, नहीं निजापद ज्ञान । ।
सूचत गुण मुक्तानके, चन्द्रभानु गति मान॥२० ॥
ताहिं गतागतको कहित, दुर्गति दुर्मतिवंत ।
पूर्व उक्त चहुँहेतको, जे न जान ते जंतु ॥ २१॥

श्लोकः ।

विवेकव्याकोशे विदधति शमे शाम्यति तृषा परिष्वंगे तुंगे प्रसरतितरां सा परिणतिः ॥ जराजीर्णैश्वर्यग्रसनगहनाक्षेपकृपणः कृपापात्रं यस्यां भवति मरुतामप्यधिपतिः ॥ १२२ ॥

दोहा ।

हरे तृषा वैराग तब, धरे विवेक विकाश ॥
तुंग भोग संयोग कर, होत न तृष्णा नाश ॥२२॥
प्रति प्रवृद्ध तृष्णा भवत, जिम कृशानु घृत संग ॥
यथा विवेकीके उरे, विद्यावृद्ध अभंग ॥ २३ ॥
जरासहित जीर्णलखी, अपनी शक्र विभूति ॥
दुखी भयो मनमाहिं तब, ताहिविनापुरुहूत॥२४॥
नष्ट विभव भव दुसह दुख, तज नहिंसके सुरेश ॥
विष्णु आदिकी कृपाको, पात्र भयो अमरेश॥२५॥
जरा यातुधानादि कर, भवत विभव मम हान ।
करुणाकर करुणाकरो,तासत्राण भगवान ॥ २६ ॥
तुंग भोग संयोग कर, नाश जु होती प्यास
मघवाहोतो दीन कत,हरि अजादिके पास ॥२७॥
विविध विषयके भोगकर, नहिं विबुधेश अघात॥
स्वल्प अवधलव भोगकर,नरन शांति कत जात२८
ताते इच्छा नाशकी, जाको इच्छा आहिं ॥
उपशम धरे विचार युत, टरे एकते नाहिं ॥ २९॥

श्लोकः ।

शिरः शार्वं स्वर्गात्पशुपतिशिरस्तः क्षिति-
धरं गिरींद्रादुत्तुंगादवनिमवनेश्चापि जल-

धिम् ॥ अधोधो गंगेयं पदमुपगता स्तो-
कमथवा विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपा-
तः शतमुखः ॥ १२३॥

चंचला छंद ।

गंगनीर ए कछू अधे अधे गती करंत ।
नाकते हरे शिरे पुना गिरिंद पै गिरंत ॥
गिरिंदते धरापरे धरातिसिंधु में परंत
शून्य जे विवेकते अनेक योनिते धरंत ॥ ३० ॥

श्लोकः ।

तृषा शुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं स्वादु सुरभि क्षुधार्तः सञ्शालीन्कवलयति शाकादिवलितान् ॥ प्रदीप्ते कामाग्नौ सुदृढतरमाश्लिष्यति वधूं प्रतीकारो व्याधेः सुखमिव विपर्यस्यति जनः ॥१२४॥

कवित्त ।

जब मुख तृषा कर सूखे तब पीवे नर,
मीठे ठंढे हरके सुगंधिवारे वारिको ।
क्षुधाकरभयो दीन शालीन महीनखात,
मेलके वरीन शाक रागसों अचारको ॥
जागे मदनागे जब सानुरागे दौरतब,

नारिमें लगावै नर दृढकर नारिको ।
व्याधिके प्रहार प्रति करे प्रतिकार प्रति,
कैसे दुख भागे त्यागे संयमोपचारको ॥३१ ॥

सोरठा ।

तृष्णा वृद्ध अभंग, अति भोगोंके भोगकर ।
यथा अग्नि घृतसंग, संयम जल कर शांतबिब॥३२॥

श्लोकः ।

किं वेदैः स्मृतिभिः पुराणपठनैः शास्त्रैर्महाविस्तरैः स्वर्गग्रामकुटीनिवासफलदैः कर्मक्रियाविभ्रमैः ॥ मुक्त्वैकं भवभारदुःखरचनाविध्वंसकालानलं स्वात्मानंदपदप्रवेशकलनं शेषा वणिग्वृत्तयः ॥ १२५ ॥

कवित्त ।

चारों वेद तंत्र छठे सिमृति सताई पठे,
आगम जो दश अठे महाविसतरेहैं ।
मतोंसों विभ्रम महा कर्म क्रिया कर कहा,
देव ग्राम कुटीमो विश्राम फल करेहैं ॥
प्रलैकाल आगवत आतम विषेणी मति,
भव दुःख करहेत सो कुमति हरेहै ।
शेष काम सारे वणजारे वृत्तियों निहारे,
के दुकानके पुरान करप्राण धरे हैं ॥ ३३ ॥

दोहा ।

कहा ग्रंथ गणके पढे, किं करमोके कीन ।
चिज्जडग्रंथ प्रभेदिनी, धी उर जब प्रगटी न॥ ३४ ॥

श्लोकः ।

रात्रिः सैव पुनः स एव दिवसो मत्वा बुधा जंतवो धावंत्युद्यमिनस्तथैव निभृताः प्रारब्धतत्तत्क्रियाः ॥ व्यापारैः पुनरुक्तभुक्तविषयैरित्थंविधेनामुना संसारेण कदर्थिता वयमहो मोहान्न लज्जामहे १२६॥

छप्पय छंद ।

वही यामिनी जान पुना दिन तथा मान कर ।
मंद जंतु धावंति उद्यमात्यंत चित्तधर ॥
प्रारंभी प्रारब्ध क्रिया तहँ तहँ त्यों राते ।
वही उक्त पुनि वही भोग भुक्ते दिन राते ॥
इम विषय रूप या जगतके व्यापारोंकर श्रमसहें
परिभ्रमतविरमतनमोहकरअहोकिंनलज्जागहें३५ ॥

दोहा ।

अहो शब्दपुनरुक्तिते, अतिडरपहिं बुधिमान ॥
पुनाउक्त पुन भुक्त यहि,कत पुनिरुक्तिप्रमाण ॥३६॥

श्लोकः ।

क्षणं बालो भूत्वा क्षणमपि युवा काम-
रसिकः क्षणं वित्तैर्हीनः क्षणमपि च संपू-
र्णविभवः ॥ जरा जीर्णैरंगैर्नट इव वली-
मंडिततनुर्नरः संसारांते विशति यम-
धानीजवनिकाम् ॥१२७॥

गीया मालतीछंद ।

नट वांगु नरबहुस्वांगधर वपु वाल पल महिं लसकहै ।
पुनिक्षणविषेतनु तरुण ह्वै तरुणीन भोगहिंरसकहै ॥
हत सर्व द्रव्य निमेष महिं पुनि पलक मो ह्वै धन सबी
दुर्वृद्धता कर अंग क्षीण वलीनकरसबछबिदबी॥२७॥
पश्चात गात किपातमें उतपात ब्रात हृदय पिखे ।
यमराजधानी भू भयानी पतित प्राणी तिहँ बिखे ॥
प्राचीन कर्म मलीनके फल दीन ह्वै भुगवे तहीं ।
अस नरकके दुख निकरते नर निकरसाके कत नहीं ॥
पुनि कहू पुण्य प्रतापते तिन तापते निकसे जबी ।
धरविविध वेष न मुग्ध वैखहिनिजस्वरूपहिंहटकबी ॥
विषवत विषमरस विष्योंके जन तिहँ विषें मनलायहैं
इह हेतु नर दुःखके तपाय न पाय हरके ध्यायहैं ॥२९॥

दोहा ।

तजे न नट नट भाव निज, भजे अनेक स्वरूप ।
नटते नर शठ तज स्ववपु, भजै विविध निज रूप४०

श्लोकः ।

तुंगं वेश्म सुताः सतामभिमताः संख्याति-
गाः संपदः कल्याणी दयिता वयश्च नवमि-
त्यज्ञानमूढो जनः ॥ मत्वा विश्वमनश्वरं
निविशते संसारकारागृहे संदृश्य क्षणभंगुरं
तदखिलं धन्यस्तु संन्यस्यति ॥ १२८ ॥

तोटक छंद ।

बहु तुंग अगार कुमारमहाँ। नविचार पतिव्रतनारितहाँ ॥
पुरुहूतसमानविभूतिघनी। नपुमान कहूँकरजातिगनी ॥
जुमहाजनमाँहिमहाजनहैं । तिनकेमनवांछितजेधनहैं ॥
बरतेमम अग्रसमग्रवहे। भवमों अवमोंसमकौन अहे ४२ ॥
जडजंतुइवें जडता करके। गर्वें अतिशयमतिको हरके ॥
सबविश्वअनश्वरमानरते। परते भवकूपणगृहेनरते ॥४३॥
ममतामय संगलसंगजरे। बहुयोनि धरें सुखशून्यचरें ॥
जिनयासगरैभवको मनमें। मनकेक्षणक्षीणतज्योक्षणमें ४४
बसके वनमें सतचेतनमें। तदरूपभए जु इसे तनमें ॥
सुरपित्रसभीजनताहिजजें । तिहँनामभजेअघओघभजें

१ पडते है संसार रूप अन्धे गृहमे वह पुरुष ।

दोहा ।

देत दण्ड बहुदण्डधर, जे गर्वंत धनपाय ।
जे सुतरांविपरीतिकै, स सकुटुंब बिब पाय ॥४६॥

श्लोकः ।

यदा मेरुः श्रीमान्निपतति युगांताग्निनि-
हतः समुद्राः शुष्यंति प्रचुरनिकरग्राहनि-
लयाः । धरागच्छत्यंतं धरणिधरपादैरपि
धृता शरीरे का वार्ता करिकलभकर्णाग्र-
चपले ॥ १२९ ॥

गीया मालतीछंद ।

श्रीमत कनकगिरिदृढजबै सुप्रलयअगनि करगिरपरे॥
मकरादि जंतु अनंतके घर जलधिसुकहिं तिहँ करे॥
जब शेषनाग शिरान करके धरत अपि धर्ता जरे।
करिकरभके करणाग्रवत चल कायकी तब क्यारटे ४७

दोहा ।

हेमाद्री वारी धरा, रवि विधु विधिना ताहिं ।
करे अंत अंतक सकल, अहं जंतु किनमाहिं॥४८॥

---

१ जे लोग धन पाकर गर्व करतेहै उनको दण्डधर यमराज बहुत दुःख देताहै और जो पुरुष सुतरां विपरीत है अर्थात् धनगर्व करनेवालोसे साधुरीति-पूर्वक उलटा है इसके(स) वह यमराज सहित कुटुम्बके दोनो चरण पूजताहै ।

श्लोकः ।

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं
गतं तस्यार्धस्य परस्य चार्धमपरं बाल-
त्ववृद्धत्वयोः ॥ शेषं व्याधिवियोगदुःख-
सहितं सेवादिभिर्नीयते जीवे वारितरंग-
चंचलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम्॥१३०॥

कवित्त ।

शुभ शत संवत नरान की प्रमाण आयु,
तास आध भाग नाश होयरैन सोय है ।
बाल वृद्ध माहिं ताहिं आधो भाग बाधो आहि,
जाड्यता अशक्यता की खानि वैस दोय हैं ॥
शेषकी अवधि जोऊ आधि व्याधि संग सोऊ,
भ्रमणो बिदेश होऊ सेवकादि खोय है ।
जीवनकी आयु माहिं सुखको तो नाम नाहिं,
तोयके तरंगके समान भंग होयहै ॥४९ ॥

श्लोकः ।

कृशः काणः खंजः श्रवणरहितः पुच्छ-
विकलः व्रणी पूतिक्लिन्नः कृमिकुलशतै-
रावृततनुः ॥ क्षुधाक्षामो जी :पिठरक

कपालार्पितगलः शुनीमन्वेति श्वा हत-
मपि च हंत्येव मदनः॥ १३१ ॥

भुजंगप्रयात छंद।

हहा मीच को नीच मारे अनंगा।
इदं श्वान श्वानी कु चाहे अलिंगा॥
कृशा पिंग काणा कटी पुच्छ गुच्छा।
श्रवे पूं व्रणोते भिगी सर्व त्वच्चा॥९०॥
कृमीसंख्यके संग सो व्यावृतांगा।
कटें कीट औ मक्षका पुंज काँगा॥
तृषा भूख सों व्याकुलो जीरणांगा।
गरे बीच पेटारको पय्य घांगा॥९१॥
इसे श्वान तेभी नहीं काम बाचे।
धनी ज्वानके चित्त मों किं न राचे॥
डरे एक कामारिते मैनशूरा।
जटी दासके पासते भी प्रदूरा॥ ९२॥

सोरठा।

शिव भृत शिवमय हेर, मनमथ तास न मनमथे॥
डरे दहे मत फेर, नाम अनंग अभाव है (९२)

श्लोकः।

माने म्लायिनि खंडिते च वसुनि व्यर्थे

शंकरके भक्तसे भी दूर रहता है।

प्रयातेऽर्थिनि क्षीणे बंधुजने गते परिजने नष्टे शनैर्यौवने ॥ युक्तं केवलमेतदेव सुधियां यज्जह्नुकन्यापयःपूतग्रावगिरीन्द्रकंदरदरीकुंजे निवासः क्वचित् ॥ १३२ ॥

मनोज छंद ।

दरशे जन जो निज मान मलीन ।
नित क्षीण पिखे धन लाभ रतीन ॥
अरथी व्यरथे फिर जात कदंब ।
हत बन्धु जनापि स्वनष्ट कुटुंब ॥ ९३ ॥
निज नष्ट युवा जु सने सन जोय ।
इम भ्रष्ट समाज सबी जब होय ॥
बुधवाननकों निज श्रेय निदान ।
युकती क सुखेन अयं सुख खान ॥ ९४ ॥
जल देव नदी कर जो शुचि आहिं ।
गिरिराज शिला उत कन्दर माहिं ॥
अथवा वन कुंजनमों बुधवन्त ।
वसके कतहूं सिमरे भगवन्त ॥ ९५ ॥

दोहा ।

नष्टभए भवभोगको, पुन न भजें जन स्थान ।
कहूँ विविक्त स्थानमें, बैठ करें हरिध्यान ॥ ९६ ॥

श्लोकः ।

प्रशांतशास्त्रार्थविचारचापलं निवृत्त-
नानारसवाक्यकौतुकम् ॥ निरस्तनिः-
शेषविकल्पविप्लवं प्रवेष्टुमन्विच्छति
शंकरं मनः ॥ १३३ ॥

कवित्त ।

विविध प्रकार वेद अर्थके संवेद वारी,
चेतनामों चंचलाई सो निकाई हतहै ।
नानाविधि वाक्यनके कौतुकमें रस जोऊ,
सो विरस भयो जाँहिं माँहिं बिलसतहै ॥
भाँत भाँत सँकलविकलप प्रशान्तजामें,
रजो तमो ते रहित सतोके सहितहै ।
ईश्वरकी सेवहित ऐसो चित चाहिअत,
ऐसे चितहीमों सत चितविकसत है ॥५७॥

श्लोकः ।

भक्तिर्भवे मरणजन्मभयं हृदिस्थं स्नेहो
न बंधुषु न मन्मथजा विकाराः ॥ संसर्ग-
दोषरहिता विजना वनांता वैराग्यमस्ति
किमतः परमर्थनीयम् ॥ १३४ ॥

कवित्त ।

इरमें सनेह तर जनम मरण डर,
उर माहिं कीनो घर बधूमें न राग है ।
मनोभव जो विकार मन्द संसकारडार,
संगदोष दुःख टार बसैकांत वाग है ॥
याँ वैराग्य भए कहा होर त्याग योगरहा,
हती सब चाहि जो वैराग्य ते वैराग्य है ।
हेत परमारथं को उत्तम वैराग्य ऐसो,
भाग बडे भागको अभाग ताँते भाग है ॥ ५८ ॥

श्लोकः ।

भोगे रोगभयं सुखे क्षयभयं वित्ते नृपा-
लाद्भयं माने हानिभयं जये रिपुभयं रूपे
जराया भयम् ॥ शास्त्रे वादिभयं गुणे ख-
लभयं काये कृतांताद्भयं सर्वं वस्तु भया-
न्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्॥१३५॥

कवित्त ।

भोगन मों रोगभय सुखोंविषे क्षयभय,
धनमध्य भय भूप चोरको रहत है ।
दास माँहिं स्वामिभय जय माँझ रिपुभय,
भय कुल बीच नीच नारीको महत है ॥

मानमाहिं हानि भय गुणोंमें खलान भय,
कायमें कृतांत भय भय सर्वगत है ।
निर्भय वैराग्य एक धरो नरो सविवेक,
गायो मैं अनेक अब थकी मोरि मतिहै ॥ ५९ ॥

दोहा ।

शुभ वैराग्य विवेक बिब, करहिं वेग कल्यान ।
दृगादित्य वत हरत हैं, अंधकार अज्ञान ॥ ६० ॥

सोरठा ।

रजनी विन सित चंद, निशा असित शशि हीनज्यों ।
उभय सहित आनंद, त्यों वैराग्य विवेक विद॥ ६१ ॥

दोहा ।

सत् समस्त वैराग्यको, कह्यो भरत शतमाहिं ।
सत्य प्राप्ति हित वचन सत, धरो नरो उर ताहिं ॥ ६२ ॥

सोरठा ।

विन संग्रह सुविचार, पशू बद्ध ज्ञानी दुखी।
पक्षी पंख प्रकार, उभय सहित सुखगति लहित॥ ६३ ॥

दोहा ।

मुगधहुँके उर उपल महिं, भरत वचन वटहेतु ।
कहुँ पुण्य खग योगते, वसे लसे सुखदेत॥ ६४ ॥
लोह छाप भाषायुत, वज्र भरतके बैन ।
सार मुमोक्षी पारखू, गहे सर्वदा चैन ॥ ६५ ॥

प्रकट विष्णु सम संस्कृत, भाषा हरि पाषाण ।
श्रद्धामान पुमानको, करत उभय कल्याण ॥ ६६ ॥

सवैया ।

तीरथानकिमाहिंसनानसमानकरेबहुदानमहानमणीके ।
शमशानमठानतरूनतरेइसथानकरेउततीर नदीके ॥
मुख मौन धरे तज भौन चरे अरुवेद ररे सुपठावतनीके
गुणएततवृंदबरातजनावरएकबिरागविनासबफीके ६७॥

कवित्त ।

दैवी गुण कवी गण औषधि समादिपुष्टे,
तृष्णा ताप मोह तम कामचोर हतहै ।
मुदित विवेकी कामी दुःखी मूढ व्रेहीवांमी,
उदधि त्रियामी मो कुसंग दिने गत है ॥
सकुचे सरोजभोगी मोक्ष सुधाके संयोगी,
श्याम श्वेत भोगी योगी मो बढै घटतहै ।
दोष वेदमाने नाहिं जनमन व्योममाहिं,
विधुवत विकसत निरवेद सत है ॥ ६८ ॥

दोहा ।

अक बृंदको गुंदकर, बंद छंदको कीन ॥
तुटत युक्ति छंदार्थ जहँ, कवी सुधारो तीन ॥ ६९ ॥
योगी जनके वचनको, भोगीभेद अविंद ।
ईशकृपा बल यथामति, कह्यो सिंधुमों बिंदु ॥७० ॥

कवित्त ।

बसे शिवा वामे अंग लसे भूत जूथ संग,
ग्रसे भंग शीश गंग ज्ञान तीन कालको ।
धेनु बाल वाहन सुधाल बालभालधरे,
गरेव्यालरुंडमाल तरे सिंहखालको ॥
नाथनके नाथ हैं अनाथनके नाथदेव ,
जाँके पादपाथ माथ धरें हरे कालको ।
दयासिंधु अलकाम कामरिपु सुख धाम,
हरद्यालकी नमाम ऐसे हरद्याल को ॥ ७१ ॥

सवैया ।

सुखशांत स्वरूप सवेंअहिऊपरबारिजनाभ सुरेशकिराई
सबविश्वअधार अकाश प्रकारसुवारिदरंगशुभांगसबाई।
वरश्रीवरलोचन नीरजसेजिँहचीनतयोगिसमाधिलगाई
भवत्रासकिनाशकिहेतनमोतिनलोकपतीइकतांहरितांई ॥

छप्पय छंद।

उचित भरत वैराग्य इनहिं इंद्रादि न पावहिं ।
विषय भोग संयोग विषे सुर जन्म बितावहिं॥
प्रगटे जो इक बार पुण्यसब बहुजन्माको ।
यहि वैराग्य विभाग ताहिं हत भाग जनाको॥७२॥
भवहरे खेद निरवेद तिहँ करे शांत उर भ्रांति हत ।
जो करे निरादर ताहिंकोकहूँनसुखआदर लहत ॥

रवि प्रभाव त्रयोदशो हरहि तिमर उर भ्रांति ।
शांतिहेतु स्वजनानको भयो आप अब शांत ॥७४॥

सोरठा ।

भरत शतक वैराग्य,प्रारंभ्यो चुहिणी पुरे ।
सम पवित्र प्रयाग,सुधा सरे[1] इतिश्री भयो ॥ ७५ ॥

दोहा ।

शशि[2] वसुवसु रस शशिवती, दरशासूके माँहि ।
संपूरण संपूरणं, भयो ग्रंथ शुभ आहि ॥ ७६ ॥

---

१ प्रयागके समान पवित्र जो 'अमृतसर—नगर' अथवा प्रयागके समान पवित्र जो यह ग्रन्थ । २ शशी एक वसु वसुआट आठ रस छह एव संवत् १८८६ में शशिवाली अर्थात् किंचित् दृष्टचंद्रवाली जो सिनीवाली नामिका आश्विन मासकी (दर्श) अमावास्या उसदिन यह ग्रन्थ पूर्णरूपसे संपूर्ण हुआ ।

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ स्तोत्राणि ।

तत्र अमृतसरःस्तोत्रम् ।

श्रीनानकाख्यगुरुणा रचितं पठंति ग्रंथं जना युवतयोपि च तेन यत्र ॥ ब्रह्मावबोधगतशोकतया वसंति श्रीरामदासनगरं भज तत्सुबुद्धे ॥ १ ॥

हे श्रेष्ठ बुद्धिवाले पुरुष ! जिस पुण्य स्थलमें नर नारी बाल वृद्ध सबी श्रीगुरुनानकजीके निर्माण किये श्रीगुरु ग्रन्थका पाठकर ब्रह्मात्मतत्त्वको प्राप्त हुए शोकरहित होकर निवास करतेहैं. ऐसे गुरुरामदासके बसाये नगरका तुम भी सेवन करो ॥ १ ॥

संशोभतेऽमृतसरः खलु यस्य मध्ये नाम्ना ततोऽमृतसरो जगति प्रसिद्धम् ॥ यस्यामृतं हरति जन्म न नाकनिष्ठं श्रीराम० ॥२॥

जिस नगरके मध्यभागमें एक अमृतका सरभी सुशोभित है इसीलिये उसको लोग अमृतसरभी

कहतेहैं जिस सरका अमृत स्वर्गीय अमृतसे भी अधिक बलवाला है अर्थात् यह जन्म मरण के भय को दूर करता है परन्तु स्वर्गका अमृत नहीं कर सकता इसलिये हे श्रेष्ठ बुद्धिवाले पुरुष ! ऐसे गुरुरामदासनगरका तुम भी सेवन करो ॥ २॥

यत्रामृतस्य सरसो हरिमंदिरं वै मध्ये
विभाति कनकेन कृतं विचित्रैः ॥ नाना-
विधैर्मणिगणैर्घटितं च दिव्यं श्रीराम०॥३॥

जहां उस अमृतके तालाबकेबीच एकस्वर्णमय तथा अनेक प्रकारके मणिगणसे जडित १ दिव्य देदीप्यमान हरिमन्दिर भी बना है ऐसे पवित्रस्थलको हे सुबुद्ध पुरुष ! तुम भी सेवन करो॥ ३॥

आस्ते हरिः सकलपापहरो हि यस्मिन्
साक्षात्स्वमंदिर उदारतराच्छकांतौ ॥
श्रीग्रंथनामधृगनंतगृहीतरूपः श्रीरा० ॥४॥

एवं जिस उदारतर स्वच्छ कान्तिवाले अपने हरिमंदिरमें अनेक प्रकारके उपदेशमय स्वरूपोंको ग्रहण करता हुआ 'श्रीगुरुग्रन्थ' इस नामको धारणकर सकल पापोंके हरनेवाले साक्षात् 'हरि' विराजमान हैं। ऐसे पवित्र स्थल गुरु रामदास नगरको हे सुबुद्ध पुरुष ! तुम भी सेवन करो ॥ ४ ॥

गायंति गानकुशलाः सततं हि यत्र वैरा-
ग्यबोधजनकं गुरुशब्दमेव ॥ शांतिंव्रजंति
हरिमंदिर एव तेन श्रीराम० ॥५॥

एवं जिस दिव्य मंदिरमें गायनविद्याकुशलरागीलोग प्रतिक्षण ज्ञान वैराग्यादिके बोधक श्रीगुरु नानकदेवके उच्चारण किये शब्दोंका गायन करतेहैं । तथा उनहीं पवित्र वचनोंको श्रवण कर उक्त मन्दिर गत अनेक नर नारी शांतिको लाभ करतेहैं । ऐसे दिव्यस्थलको हे सुबुद्ध पुरुष ! तुम भी सेवन करो ॥ ५ ॥

श्वेताश्मसंघटितदीर्घविशालसेतौ ध्या-
यंति केचिदपरे विमृशंति यत्र ॥ पृच्छंति
केचिदितरे प्रवदंति तज्ज्ञाः श्रीराम० ॥६॥

श्वेत पाषाण अर्थात् संगमरमरसे बना हुआ दीर्घ तथा विशाल जो हरिमन्दिरका सेतु (पुल) उस पर बैठकर जहां अनेक लोग ध्यान करतेहैं तथा अनेक लोग विचार करतेहैं कई एक अधिकारी जहां प्रश्नकर-रहे हैं तथा अनेक विज्ञ लोग उनको उत्तरसे संतुष्ट कररहेहैं, ऐसे प्रभावशालीगुरु रामदास नगरको हे सुबुद्ध पुरुष ! तुम भी सेवन करो ॥ ६ ॥

सेतुस्थभक्तजनपादरजोभिषेकान्नश्यांति

कोटिभवसंचितदुष्कृतानि॥दुःखं च यत्र सकलानि हरिप्रसादात् श्रीराम० ॥७॥

उस हरिमन्दिरके पुलपर निवास करनेवाले हरिभक्तजनोंके चरणोंकी धूलिसे मस्तकपर तिलकमात्रके करनेसेअनेक श्रद्धावान् पुरुषोंके कोटिजन्म जन्मान्तरोंमें किये सकल पाप दूर होतेहैं तथा परमेश्वरकी कृपासे वर्तमानकालमें होनेवाले अनेक प्रकारके दुःख भी दूर होते हैं, ऐसे गुरुरामदास नगरका हे सुबुद्ध पुरुष ! तुम भी सेवन करो ॥ ७ ॥

संभाति हाटकमयी निकटे पताका कांत्या च भानुसदृशी हरिमंदिरस्य॥दिव्यातिसुंदरतनुः सुखदा च यत्र श्रीराम०॥८॥

जहां दिव्य स्वरूप हरिमन्दिरके समीप सुन्दर कान्तिवाली देदीप्यमान सूर्य सदृश प्रकाशवाली तथा दर्शनमात्रसे भक्तजनोंके सुखकी जनका स्वर्णमयी चमचमाती दो पवित्र पताका (ध्वजा) विराजमान हैं ऐसे श्रीगुरु रामदासके रमणीय नगरको हे सुबुद्ध पुरुष !तुमभी सेवन करो ॥ ८ ॥

संभात्यकालपुरुषस्य महच्च यत्र दिव्यं सुमंदिरमनेकसुशिष्यजुष्टम् । मंत्रोपदेशकुशलैः परिरक्षितं च श्रीराम० ॥ ९ ॥

जहां अनेक सुयोग्य शिष्य लोगों करके सेवित तथा गुरुमंत्र उपदेशकुशल शिष्य लोगोंसे परिरक्षित एक परम देदीप्यमानअति विस्तार वाला अकाल-पुरुषका मनोहर मन्दिर है ऐसे श्रीगुरु रामदासके पवित्र नगरको हे सुबुद्ध पुरुष ! तुमभी सेवन करो ॥९॥

चौकीति नाम विमलो गुरुशिष्यसंघः सायं परिक्रमविधौ सततं प्रवृत्तः ॥संशोभते हि गुरुशब्दमुखश्च यत्र श्रीराम० ॥ १० ॥

जहां गुरुजीके विमल शिष्योंका समुदाय सायंकालमें हरिमन्दिरके परिक्रमण करणार्थ (चौकी) नामसे प्रतिदिन प्रवृत्त होताहै तथा शिष्य लोग गुरुजीके शब्दोंका उच्चारण करते हुये जहां शोभायमान होतेहैं ऐसे पवित्र नगरका हे पुरुष ! तुम भी सेवन करो ॥१०॥

संराजतेऽमृतसरोवरतीर्थतीरे देदीप्यमानवरमंदिरदिव्यपंक्तिः ॥ नानाकृतिश्च परितोऽतिथयो हि यत्र श्रीराम०॥११॥

जहां जिस अमृतके सरोवररूप तीर्थके किनारेपर देदीप्यमान सुंदर मन्दिरोंकी दिव्य परंपरा चारों तरफ विराजमान है तथा जहां उन मन्दिरोंमें अनेक प्रकारके साधु निवास कर रहे हैं ऐसे श्री अमृतसर नामक नगरका हेसुबुद्धपुरुष! तुमभी सेवनकरो ॥११॥

ऐरावतीवरनदीसलिलं पवित्रं यत्रामृतस्य
झटिति प्रविशद्धि कुंडम् ॥ रूपं स्वनाम
च विहाय भवेत्सुधाशु श्रीराम० ॥ १२ ॥

जहां ऐरावती नामक श्रेष्ठ नदीका परम पवित्र
पूर्व नाम रूपको त्यागकर उसीसमय अमृत होजाताहै
ऐसे उत्तमनगरको हेसुबुद्धपुरुष ! तुमभी सेवन करो ॥

ऐरावतीसलिलसंगमदेशपार्श्वे आस्ते
भवो भवहरो वटवृक्षछायाम् ॥ आश्रित्य
दीर्घसघनां वरदश्च यत्र श्रीराम० ॥१३ ॥

और जहां ऐरावती नदीके जलसंगम प्रदेशके समीपवर्ती वट वृक्षकी सघन छायाके नीचे संसार चक्रके हारक महादेवजीका स्थान है अर्थात् अनेकप्रकारके वरप्रदायक तथा भवहारक जहां महादेवजी स्वयं विराजमान हैं ऐसे महानगरका हे सुबुद्ध पुरुष ! तुम भी सेवन करो ॥ १३ ॥

तिष्ठंति भीमनिकटे सततं हि यत्रोदासीनवर्यमुनयः सजटाविभूत्या ॥ संशोभमानतनुकांतिधरा महांतः श्रीराम० ॥ १४ ॥

और जहां महादेवके स्थानके समीप जटा तथा
विभूतिकर संशोभमान शरीरकी कांतिवाले उदासीन

मुनिवर्य्य महात्मा लोग सदा निवासकरतेहैं ऐसे उत्तम नगरका हे सुबुद्ध पुरुष! तुमभी सेवन करो ॥ १४ ॥

कुष्ठावृतंस्वपतिमीशधियाभजंती संस्थाप्य योषिदशनाय गता गृहीत्वा ॥
आगत्य सुन्दरतनुं स्वपतिं विलोक्यापृच्छत्पतिं च भिषजा खलु केन दिव्यः १५

और जहां कुष्टरोग पीडित शरीरवाले अपने प्रिय पतिको ईश्वररूपसे सेवन करनेवाली कोई एक स्त्री अपने पतिको उक्त सरोवर किनारे स्थापन करके भिक्षार्थ ग्राममें गई, मांग कर आई तोदेखा कि पतिका शरीर नीरोग स्वच्छ सुन्दर है पतिसे पूँछने लगी कि आपका शरीर किस वैद्यने ऐसा दिव्य बना दिया है १५

देहः कृतो हि भवतां वरमौषधं किं सर्वं वदस्व कृपयेति शृणुष्व भद्रे ॥ भाग्येन लब्धमिदमौषधमेव नान्यत्काकः कुपक्षयुत एव बलिष्ठकाकैः ॥ १६ ॥

अथवा कौन आपको उत्तमऔषध मिला है जिससे रोग दूर हुआ यह सब कृपापूर्वक कहो . पतिने कहा हे कल्याणि ! श्रवण कर मेरे भाग्यसे लाभ हुआ और औषध कोई नहीं है किन्तु यही है एक कुत्सित पक्षोंवाला काक दूसरे काकोंसे ॥ १६ ॥

संपीडितोऽत्र पतितः सलिले सुपत्रो जातः क्षणादिति विलोक्य मयात्र दिव्ये ॥स्नातं जले सकलरोगविहीनदिव्यो देहो ममाभवदतोऽमृतमेव विद्धि॥१७॥

पीडित होकर इस सरोवरमें पड़ गया वह पड़ताही श्वेत सुन्दर पक्ष युक्त होकर उडा तो उसको देखकर मैंनेभी इस दिव्य सरोवरमें स्नान किया तो मेरा शरीर भी सकल रोग रहित दिव्य बन गया इसलिये हे भामिनि ! इसको तूभी अमृतस्वरूपही जान ॥ १७ ॥

नान्योऽत्र कश्चन समागत एव वैद्यः सत्यं ब्रवीमि वचनं कुरु चात्र भक्तिम् ॥ यत्रेत्थमास पुरुषस्य कथास्वनार्य्याश्रीराम० १८

सिवाय इसके यहां दूसरा वैद्य कोई नहीं आया है हेप्रिये ! मैं तेरेको सत्य कहताहूं कि हम लोगोंको इस उत्तम स्थलका सेवन करना चाहिये. एवंभूत जिस दिव्य स्थलमें किसी पुरुषका स्वस्त्रीके साथ विचित्र चरित्र हुआ ऐसे श्रीगुरु रामदास नगरको हे सुबुद्ध पुरुष ! तुम भी सेवन करो ॥ १८ ॥

वासिष्ठभागवतभारतमेव नित्यं शृण्वंति केचिदपरे प्रतिबोधयंति ॥ पीयूषकुंडनिकटे सुधियश्च यत्र श्रीराम०॥१९॥

और जहां उक्त अमृतकुण्डके चारों ओर वासिष्ठ, भागवत तथा महाभारतादिकी कथा अनेक श्रोतागण श्रवण करतेहैं तथा अनेक बुद्धिमान् वक्ता लोग बोधन करतेहैं ऐसे श्रीगुरुरामदासके नगरको हे पुरुष ! तुम भी सेवन करो ॥ १९ ॥

स्नात्वा सुधासरसि विष्णुशिवादिपूजां कुर्वंति केचिदितरे मनसो निरोधम्॥स्तोत्राणि पावनतमानि पठंति यत्र श्रीरामः॥

एवं जहां उक्त सुधाके सरोवरमें स्नान करके अनेक उपासक पुरुष विष्णुशिवादिका पूजन कर रहेहैं तथा दूसरे कई एक पुरुष जहां मनोनिरोध कर रहे हैं एवं और कई एक पुरुष जहां पवित्र स्तोत्रोंका पाठ कर रहे हैं ऐसे पवित्रतम क्षेत्र श्रीगुरु रामदासजीके नगरका हे सुबुद्ध पुरुष ! तुम भी सेवन करो ॥ २० ॥

रात्रौ सदामृतसरोवरतीर्थतीरे कृत्वा सदा हि विमृशति विवेकनिष्ठाः ॥किं ब्रह्म का प्रकतिरात्मवपुश्च कीदृक्पृच्छंति केचिदिति केऽपि वदंति संतः ॥ २१ ॥

और जहां अनेक विवेकीलोगरात्रिकालमेंअमृतसरोवर नामक तीर्थके किनारे पर सभा करके अर्थात्

मिलकर बैठके अनेक प्रकारके विचार करतेहैं कि ब्रह्म क्याहै ?प्रकृतिका स्वरूपकैसाहै? जीव आत्माका स्वरूप कैसा है ? इत्यादि अनेक तरहके अनेक पुरुष प्रश्न करतेहैं और संत लोग उनके उत्तर देते हैं ॥ २१॥

सत्यादिचिह्नमिति केपि वदन्ति तज्ज्ञा
ब्रह्मास्तिहेतुरखिले हि विकारमात्रे ॥ एवं
च केचन वदंति महानुभावा देशादिभिः
परिमितं न यदेव तद्धि ॥ २२ ॥

उन पूँछनेवालोंके उत्तरमें कोई एक ज्ञानी लोग ब्रह्मको सच्चिदानन्दस्वरूप बतलातेहैं दूसरे कई एक महानुभाव लोग ब्रह्मको यावद् विकार मात्रका अभिन्न निमित्त उपादान कारण बतलातेहैं,एवं और कई एक महानुभाव लोग ब्रह्मको देश काल वस्तु परिच्छेदसे रहित कहतेहैं ॥ २२ ॥

मायां त्विति श्रुतिबलात्प्रकृतिं च मायां
केचिद्वदन्ति कुशला अपरे गुणानाम् ॥
साम्यस्थितिं प्रकृतिमेव वदन्ति धीराः
शक्तिं परस्य पुरुषस्य वदंति चान्ये॥२३ ॥

ऐसेही प्रकृतिके प्रश्नके उत्तरमें कई एक लोग मायां तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम्' इस-

श्रुतिवचनके अनुरोधसे मायाहीको प्रकृति बतलातेहैं और दूसरे विद्वान् लोग सांख्यमतके अनुसार सत्त्वादि गुणोंकी साम्य अवस्थाहीको प्रकृति बतलातेहैं, एवं और कई एक विद्वान् लोग परपुरुष ईश्वरकी शक्तिहीको प्रकृति मानते हैं॥२३॥

आभासमेव तु चितः प्रवदंति जीवं केचित्परे सुमनसः प्रतिबिंबमाहुः ॥ कूटस्थलिंगतनुचित्प्रतिबिंबसंघं केचिद्वदंत्यसुधृतेरपरे वदन्ति ॥ २४ ॥

एवं जीवात्माके प्रश्नके उत्तरमें कई एक विद्वान् लोगचेतमकेआभासहीको जीवमानतेहैं, दूसरेकईएक शुद्धबुद्धिवाले लोग प्रतिबिम्बको जीवस्वरूप कहतेहैं और कई एक विचारकुशल लोग कूटस्थ लिङ्गशरीर तथा चेतनका प्रतिबिम्ब इन सबके समुदायको जीव बतलातेहैं ऐसेही और कई एक विचारशील लोग प्राणधारण करनेसे चेतनकी जीवसंज्ञा कहते हैं ॥ २४॥

इत्यादिकं बहुविधं खलु यत्र कुत्र मित्रैः सुतैः स्वजनकैश्चरमाश्रमस्थैः ॥ वाक्यान्नराः सुमनसः प्रवदंति यत्र श्रीराम०॥२५॥

इत्यादि अनेक प्रकारके विचारपूरित वाक्योंको जहां बुद्धिमान् लोग जहां तहां बैठकर अपने मित्रोंके

पुत्रोंके सम्बन्धियोंके तथा संन्यासियोंके साथ बोल चाल करते हैं ऐसे श्रीगुरुरामदासके पवित्रनगरको हे सुबोध पुरुष ! तुम भी सेवन करो ॥ २५ ॥

स्तोत्रं पठंति य इदं सततं विशुद्धाः श्रद्धां विधाय नियमाद्गुरुभक्तियुक्ताः ॥ रागादिदोषरहिताः पुरुषाः सदैव ते श्रीसुधासरसि वासमतो लभंते ॥२६॥

जे लोग श्रद्धाभक्तिपूर्वक प्रतिदिन शुद्ध होकर इस स्तोत्रका नियमपूर्वक पाठ करतेहैं वे लोग गुरुभक्ति युक्त तथा रागादि दोष रहित हुये सदाही सुखपूर्वक श्री अमृतसर नामक नगरमें निवासको लाभ करतेहैं॥२६॥

इतिश्रीमदुदासीनवर्य्यगंगारामशिष्यणोदासीनात्मस्वरूपेणविरचितंश्रीमदमृतसरःस्तोत्रं समाप्तम् ॥

ज्ञानदीपाख्यं स्तोत्रम् ।

ॐपरीक्षां विधाय प्रमाणैर्विरक्तो नमे स्याद्विनाशीति निष्ठां प्रयातः ॥ गुरुं श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं च गत्वा यदाप्नोति तत्त्वं तदेवाहमस्मि ॥ १ ॥

स विद्वान्प्रशांतं विनेयं प्रपन्नं निरीक्ष्य प्र-

सन्नः कृपाधीनचित्तः ॥ अधिष्ठानमस्य
प्रपंचस्य यद्धि वदेन्नित्यशुद्धं तदेवा०॥२॥
अवस्थासु सर्वासु भात्येकरूपं स्वभा-
स्यैर्नभातीन्द्रियाद्यैःसदैव ॥ घटाद्यैर्यथा
भानुरात्मस्वरूपं परंबोधरूपं तदे० ॥ ३ ॥
निषिध्याखिलं दृश्यजातं निषेध्यं निषे-
धावसानं स्वतोभासमानम्॥मनोवागतीतं
परानंदरूपं परं ज्योतिराद्यं तदेवा०॥ ४ ॥
अहंतां परित्यज्य देहे ह्यनित्ये यथा स्वप्न-
दृष्टे प्रबोधं प्रयाति ॥ तथा तां परित्यज्य
जाग्रच्छरीरे भवेद्ब्रह्म यत्नात्तदेवा०॥ ५ ॥
मुमुक्षाप्रशांति यदास्यप्रयाति न बंधो न
मोक्षोऽनुभूत्यास्ति यस्य ॥ न जन्मापि
मृत्युर्न पुण्यं न पापं समाधिस्तदन्यस्त-
देवा० ॥ ६ ॥

श्रुतं ब्रह्मसृष्टेः पुराभेदशून्यं सदेकं यथा
वर्तमानेऽपि काले ॥ तथैवास्तिमोक्षावसानं
न यस्मिन् विभेदोस्ति किंचित्तदे०॥७॥

यदज्ञानतो दुःखराशौ निमज्जेत्सुखाब्धौ
चयस्यप्रबोधेन सद्यः ॥ भवेत्कृत्यशून्योऽथ
यस्यानुभूत्यासदा शुद्धरूपं तदे० ॥ ८ ॥
इहामुत्र भोगाद्विरक्तः परात्मानुसंधान-
निष्ठः पुमाञ्छुद्धबुद्धिः॥ तमोहीनचक्षुस्त-
वंज्ञानदीपं पठेद्योनभूयोवसेन्मातृकुक्षौ ९॥

इति श्रीमदुदासीनवर्य्यगंगारामशिष्येणोदासीनात्मस्वरूपेण विरचितं ज्ञानदीपाख्यं स्तोत्रं समाप्तम् ॥

श्रीकृष्णाष्टकम् ।

आनंदलेशमनुगत्यभवंति यस्य ब्रह्माद-
यो पि सुखिनः सकला हि देवाः॥आनंद-
सिंधुमखिलं त्वनुभूय वाक्यात्कृष्णं भ-
जामि चितिरूपमजं तमेकम् ॥ १ ॥
अर्केंदुवह्निवचने सततं प्रशांते सर्वोजनो
व्यवहृतिंकुरुतेऽथ येन॥सुप्तोविलोपरहितं
मनसि प्रलुप्ते कृष्णं० ॥ २ ॥
यंज्योतिषां सुरगणा विदुरप्रमेयं दीपं म-
नोपि मनसो नयनस्य नेत्रम्॥श्रोत्रस्ययः

श्रवणमेव भवेत्परात्मा कृष्णं ० ॥ ३ ॥
यस्याप्रबोधवशतो निरयप्रवेशं मूढा व्र-
जंति बहुयोनिषु चापि दुःखम् ॥ बोधेन
यस्य लभते न च दुःखगंधं कृष्णं०॥ ४ ॥
प्राणेनजीवति नरोनहि कश्चिदेव नापान-
तोपि सततं त्वितरेणयेन ॥ सर्वोपि जीव-
ति जनः श्रुतिसिद्धमीशं कृष्णं० ॥ ५ ॥
नेदिष्ठमेव विदुषामनुभूतिमानात् प्रत्य-
क्तयास्फुरणतो भुवनप्रकाशात् ॥ दूरा-
त्सुदूरतममेवबहिर्मुखानां कृष्णं ०॥ ६ ॥
पद्मोद्भवं स्वतनयंप्रहिणोति वेदान् याग्य
स्यधावति भयेन चमृत्युरेषः ॥ अग्निर्भ-
येन तपति द्युमणिश्च यस्य कृष्णं० ॥ ७ ॥
योवेत्तिवेद्यमखिलंनच वेदितान्यो यस्या-
स्ति कश्चिदपिवेदकृदेवयश्च ॥ यं वेदवेद्य
इति वेदविदो वदंति कृ० ॥ ८ ॥
बोधादिमंपठतियोऽमलधीः सदैव भक्त्या
स्तवं सुखतमे प्रणिधायचित्तम् ॥ कृष्णे परे

विमलबोधघने प्रशांते बन्धं विधूय पुरुषो
विशते स कृष्णम० ॥ ९ ॥

इति श्रीमदुदासीनवर्य्यगंगारामशिष्येणोदासीनात्म-
स्वरूपेणविरचितंश्रीकृष्णाष्टकं समाप्तम् ।

श्रीरामाष्टकम् ।

यस्मादुदेति निखिलं स्थिरजंगमं यो
वाचां धियां च विषयो न भवेत्सदैव ॥
यस्मिन्स्थितो न लभते पुनरेव जन्म तं
राममद्वयमनंतमनादिमीडे ॥ १ ॥

कोशान् विहायसकलान्परिशेषमात्रं जा-
नंति यंविमलबोधदृशा महान्तः ॥ ब्रह्मे-
तिवेदवचसागुरुदेवभक्तास्तंराम० ॥ २ ॥

त्यक्त्वा तनुं यममलं प्रविशंति तज्ज्ञा
ध्यायंति यं शिवविरंचिमुखाश्च देवाः ॥
पश्यंति योगनिरता विजितेंद्रिया यं तं
राम० ॥ ३ ॥

तावत्त्वलीकमपि सत्यतया विभात्यधि-
ष्ठानमस्य विदितंनभवेद्धियावत् ॥ बोधेन

यस्यनविभातियथाखनैल्यं तं राम० ॥४॥
भासार्कसोमचपलानलतारकाणिलोहादि
तप्तमनलेन यथा विभांति॥यस्यानु-
भानमुपयांति मनो वचांसि तंराम० ॥५॥
सूर्येन्दुरूपनयने चरणौ चभूमिःप्राणोऽथ
यस्यपवनो हृदयं च विश्वम्॥मूर्द्धानलोभ-
वति वाग्विवृताश्च वेदास्तं राम० ॥ ६ ॥
सृष्टाप्रविश्य तदनुस्वयमेवसच्चत्यच्चाभ-
वच्चऋषिभिःसततंविमृग्यः ॥ लब्ध्वारसं
यममलं सुखमाप्नुवंति तं राम० ॥ ७ ॥
यश्चेतनश्चितिमतां मतिलोचनानां नि-
त्यश्चयोगगणशब्दमुखब्रुवाणाम् ॥ सत्ता-
प्रदोनतुसतामनुभूतसिद्धस्तंराम० ॥ ८ ॥
ज्ञानात्पुमान् विमलधीर्विरतिं प्रयातो ज-
न्यात् स्वकर्मफलतो ध्रुवनाशभाजः ॥
स्तोत्रं पठेद्यइहराघवभक्तियुक्तः पातुंनवै
सलभते जननीपयांसि ॥ ९॥

इति श्रीमदुदासीनवर्य्यगंगारामशिष्येणोदासीनात्मस्वरू-
पेण विरचितं श्रीरामाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

ब्रह्मनिरूपणं स्तोत्रम् ।

आराध्यराममखिलेश्वरमादिदेवं प्राप्येतिपृच्छतिगुरुंकिमिदंचकोहं ॥ तं शिष्यमाहकृपयेति गुरुर्महात्मा ब्रह्मेदमस्तिसकलं त्वमहं तथैव ॥ १ ॥

अग्निर्यथाहिभुवनंगतएकआस्ते नानाकृतिःस्थिरचरं पुरुषस्तथातः ॥ जुष्टां सदेति मुनिभिर्धिषणां गृहाण ब्रह्मे० ॥ २ ॥

चंद्रो यथाबहुविधो जलपात्रभेदादेकस्तथा मतिषु भाति परः प्रविष्टः ॥ तेषांभिदास्ति जगतो न सदेति विद्धि ब्रह्मे० ॥ ३ ॥

सर्वासु दिक्षु च विदिक्षुकणाः प्रवृत्तावह्नेर्यथापि नभवंति ततो विभिन्नाः॥ जीवास्तथात्मन इदं च ततोवबुद्धं ब्रह्मे० ॥ ४ ॥

द्रष्टास्तिनान्यइत आत्मनएषदेवः सर्वेषु तिष्ठति चिदात्मतया विभातः ॥ आत्मैव सर्वमितिवेदवचोस्ति तस्माद्ब्रह्मे० ॥ ५॥

आत्मैव ते यमयितावपुरस्यसर्वं शास्ता
प्रविश्यसकलस्यजनस्य योहि ॥ इद्धोंशु-
मांस्तपति येन तदेव शुद्धं ब्रह्म० ॥ ६ ॥
एकंयमूचुरमलंबहुधास्वबुद्ध्याप्राज्ञाश्चतुर्मु-
खयमेंद्रहुताशरूपम् ॥ भेदं प्रकल्प्य
तत एव सदेति पश्य ब्रह्म० ॥ ७ ॥
नारायणात्मकमिदं जगदाहवेदो जातंय-
तोभवति तत्र ततोविभिन्नम् ॥ तोयात्तरंग-
मिववेद्मिसदेतितस्माद् ब्रह्म० ॥ ८ ॥
ज्ञानादिदं पठतियः खलुशुद्धबुद्धिः स्तोत्रं
मनःपरतरेप्रणिधायनित्यम् ॥ ज्ञात्वापरा-
त्परतरंपरिमुच्यबन्धं सद्यः पुमान्भवति
सोथ परात्मरूपः ॥ ९ ॥

इति श्रीमदुदासीनवर्यगंगारामशिष्येणोदासीनात्मस्वरू-
पेणविरचितमखिलब्रह्मनिरूपणं नाम स्तोत्रं समाप्तम् ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास 'श्रीवेङ्कटेश्वर' स्टीम् प्रेस-बंबई.

क्रय्यपुस्तकोंकी संक्षिप्तसूची।

नाम.	कीमत.
अपरोक्षानुभूति-श्रीशंकराचार्यकृत और स्वामि श्रीविद्यारण्य मुनिकृत दीपिका तथा श्रीयुत पं॰रामस्वरूपजी कृतभाषाटीका समेत। जिसमें-संक्षेपसे वेदान्त प्रक्रियाका सरल रीतसे भलीप्रकार वर्णन है	॥।)
अष्टावक्रगीता-भाषाटीका-सहित श्रीअष्टावक्रमुनि प्रणीत गुरुशिष्य संवादमें ब्रह्मविद्या जाननेका अतिसरल सुगमोपाय है	१)
अवधूतगीतामूल-श्रीमत्परमयोगिवर श्रीदत्तात्रेय प्रणीत रेशमी गुटका	।≡)
अवधूतगीता भाषाटीकासमेत.	१॥)
अद्वैतसुधा.	॥।)
अध्यात्मप्रदीपिका-श्री अष्टावक्र मुनिविरचित अत्युत्तम ज्ञान मय वेदान्तोपदेश ...	।=)
आत्मबोध-भाषाटीकासमेत। वेदान्तमें प्रवेश करनेवाले को शीघ्र बोध होता हैं...	।=)

नाम. कीमत

गणेशगीता-पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र कृतभाषा-टीका सहित (गणेशपुराणोक्त) ... ... ॥)

गोविन्दाष्टक-आनंदगिरिकृत संस्कृत टीका तथा पं० कन्हैयालाल शर्मकृत भाषा-टीकासमेत . ... =)

जीवन्मुक्तिगीता-भाषाटीकासमेत। इस छोटेसे ग्रंथमें ज्ञानोपदेश उत्तम वर्णित है ... -)

तत्त्वबोध-भाषाटीकासमेत। यह वेदान्तका प्रथमश्रेणीका सर्वोत्तम ग्रन्थ है ... ≈)

देवीगीता-(देवीभागवतांतर्गत) भाषाटीका सहित। शाक्त लोगों याने देवीभक्तोंकेलिये नित्यपाठ करनेयोग्य है ... ॥=)

नारदगीता-मूलमात्र. ... ... -)

नारदगीता-भाषाटीकासहित. ... ... -)

निर्वाणाष्टक. ... ... -)

पञ्चदशी-सटीक-पं० रामकृष्णाख्य विद्वान् की तत्त्वविवेक व्याख्या टीका सहित २॥)

पञ्चदशी-पं० मिहिरचंद्रकृत अत्युत्तम भाषाटीकासहित। जिसमें-तत्त्वविवेक, भूतविवेक, महावाक्यविवेक, कूटस्थदीप,

नाम. कीमत.

नाटकदीप, योगानंद, आत्मानन्द, अद्वैतानन्द, विद्यानन्द, विषयानन्दादिमें वेदान्तमार्ग भलीभाँति दर्शाया है ... ४)

पञ्चदशी—केवलभाषामात्र आत्मस्वरूपजी कृत उपरोक्त सर्वालंकारोंसे विभूषित है ४)

पञ्चदशीगीता—भाषाटीकासमेत । जिसमें श्रीमहाभारतान्तर्गत—काश्यपगीता, शौनकगीता, अष्टावक्रगीता अध्याय ४, नहुषगीता अध्याय २, सरस्वतीगीता, युधिष्ठिरगीता अध्याय ४, बकगीता, धर्मव्याधगीता तथा श्रीकृष्णगीतादिकका एकत्र संग्रहहै. ... ... ॥।)

प्रश्नोत्तरमुक्तावली—भाषाटीकासहित । इसमें अतिश्रेष्ठ १२२ प्रश्न और उनके यथार्थ उत्तर हैं (गुरुशिष्य संवाद) ... ≡)

ोत्तररत्नमाला—सटीक ... ... =)

सम्पूर्ण पुस्तकों का बडा सूचीपत्र अलग है मंगा लीजिये ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस—बंबई.